बीकानेर

गी ता य न

सम्पादक

हरीश भादानी

पूनम दईया



सूर्य प्रकाशन मन्दिर
बीकानेर

प्रथम संस्करण

प्रकाशक
वातायन प्रकाशन
५, बागा बिल्डिंग
बीकानेर

मूल्य : तीन रुपये

मुख्य वितरक
सूर्य प्रकाशन मन्दिर
नेहरू मार्ग बीकानेर

मुद्रक
एज्यूकेशनल प्रेस
बीकानेर

GEETAYAN CRITICISM : HARISH BHADANI
Price Rs 3 POONAM DAIYA

अनुक्रम

सम्पादकीय

गीत

गद्य-गीत

निबन्ध-परिचर्चा

मूल्यांकन

सम्पादकीय

वृत्ताकार गति (वृत्त गति) में ध्रुव कड़ी बहुत सहायक होती है। तात्पर्य यह कि गीत में बार बार मुखड़े के दोहराये जाने से जहां से गीत प्रारम्भ होता है वहीं अन्त होता है—जहां अन्त होता है वहीं से प्रारम्भ होता है और इससे ही गीत का रूप अनन्त का प्रतीक बन जाता है। वस्तुतः उत्कृष्ट गीत में सुनने वाले को ऐसा भ्रम होना चाहिए कि इस गीत में विराम ही नहीं है—जैसे लट्टू जब वेग से चलता है तो लगता है कि खड़ा है ऐसी ही गति गीत में होनी चाहिए जो गति-वेग और स्थिरता दोनों को सम्हाले। भाव और अर्थ गीत में अभिन्न होने चाहिए। श्रोता भाव के साथ ही बिना उसके अर्थ को जाने उसका अनुभव पा लेता है। गीत के लिए उसका अर्थ समझना उतना जरूरी नहीं है जितना कि उसके भाव से

अनुभूति प्राप्त करना । सार्वभौमिकता सिखाना और सोचना इससे अनुभूति नहीं आती है और केवल समझना ही गीत नहीं है । गीत की अनुभूति दैहिक है—जैसे लोक-नृत्य में नृत्य करने वाले और देखने वाले दोनों दैहिक तन्मयता पाते हैं यह गीत का विशेष गुण है । प्रागैतिहासिक युग में पूर्णत्व का प्रतीक—भूत होता था और उसकी साधना करते-करते मनुष्य पूर्णत्व की अनुभूति पा लेता था उसी प्रकार गीत भी एक तरह की भक्तियुक्त साधना है जिसमें भूतपति प्रथम आवश्यकता है इसीलिए छन्द और लय की आवश्यकता पड़ती है । लय भावों का जागरण करती है जागृत भावों को पकड़ कर रखती है—जैसे लहरों से नदी का संचालन गतिशील भी रहता है और स्थायी भी रहता है । छन्द लय का Pattern बनाता है जैसे मुंह से उच्चरित शब्द भी लय है, पर असम्बद्ध है अतः वह छन्द नहीं है और छन्द नहीं है तो लय को स्थायित्व और विशेषता नहीं मिलती । लय सामान्य और विशेष दोनों है । छन्द केवल सामान्यता को रखता है लय अपनी विशिष्टता को किंवा दोनों को रखती है ।

कवि का अन्तस्तल उसका मन प्राण जब घनीभूत भावनाओं से स्पन्दित हो कर स्वरों की स्वाभाविक लय गति में स्वतः नियुक्त होता चलता है तो गीत अपना आकार ले लेता है । भावना की घनीभूतता अपने चरम परिपाक में रस से स्नात हो कल्पना के सतरंगी आवरणों से सज्जित हो स्वरों का नर्तन कर उठती है । उसमें गेयता की चरम स्थिति होती है यही गीत का सफलतम रूप होता है ।

हिन्दी गीत को अपने वर्तमान रूप में पहुँचने के लिए कई मंजिलें तय करनी पड़ी हैं । युग के अनुसार भाव बोध बदलते गए । गीत की अपनी प्रथम अवस्था में उसके लिये केवल गेयता ही आवश्यक होती थी वाङ्मय की आवश्यकता नहीं थी । फिर धीरे धीरे सामूहिक भावनाओं को स्थान मिला और गीत हृदय की रस

ममता से रंगता चला गया ।

एक अवस्था यह भी आयी जबकि काव्य मात्र सैद्धान्तिक और अलंकरण बना और हृदय से दूर हटता गया । फिर राष्ट्रीयता से लोक-मानस को रंजित करता हुआ केवल सुधारवादी वाणी ही देने लगा । इसके फलस्वरूप जो रूप हमारे सामने आया उसमें आत्मानुभूति की तीव्रता और प्रगीतात्मकता का समन्वय तो अवश्य हुआ लेकिन उसमें गीति-सौंदर्य नहीं था, जो गीत-कविता के लिए काम्य है । आत्मानुभूति लोक-सुलभ और उसकी अभिव्यक्ति सहज होनी चाहिए । गीत केवल वैयक्तिक अन्तरतम से उच्छ्वसित भावनाओं के रूमानी गीत ही नहीं हैं ।

नई कविता के साथ नवीन छन्द, नई व्यंग्यात्मकता, नई उपमाएं, अभिव्यक्ति की नई दिशा, नई अर्थ-शक्ति इन सब का समावेश मिला । नई कविता के साथ-साथ गीत के स्वाभाविक रूप में एक परिवर्तन आया और उपमानों की दृष्टि से उसी प्रकार के नवीन प्रयास होने लगे । ये नवगीत अपनी सम्प्रेषणीयता में दुरूह रहे और अस्वाभाविक बिम्ब विधान के कारण प्रभावात्मक अभिन्न रहे । इन गीतों में तन्मय कर देने की शक्ति चाहे न हो परंतु अपनी प्रभावोत्पादकता के कारण अपेक्षित भावों को तरंगित करने में समर्थ हो जाते हैं । इन्हीं गीतों के साथ साथ कुछ ऐसे गीत भी लिखे गए हैं जो अपनी आत्मिकता के कारण मीठे बने हैं उनमें गेयता का प्राचुर्य है, वातावरण ग्राम्य सुषमा का है, पर ये दुरूह होकर सीमित सम्प्रेषणीयता लिये हुए हैं । नवीन भाव बोध की बात हर जगह कही जाती है—उससे गीत भी अछूता नहीं रह सकता, पर नवीन भाव-बोध को दुरूह बिम्बों में यथार्थिक पर अत्यधिक बौद्धिकता को माध्यम बना लेना ही गीत नहीं है । भावात्मक कविता के प्रति लोकजीवन पाठक का रोष लगा कर जो एक बुद्धिवादी प्रक्रिया सामने है उसमें इस परम्परा के स्वर को शायद ठेस पहुँचे किन्तु यह निर्विवाद है कि

संवेगों का आकुल स्पन्दन नश्वर नहीं होगा। अतः भावात्मक रचनाओं का भविष्य भी आशान्वित है।

प्रस्तुत 'संग्रह' में संकलित गीत दो दृष्टि को सामने लायेंगे। प्रथम कि ये गीतकार इसमें अधिक मिलेंगे जो कि अनुप चित और प्रौढ़ता प्राप्त नहीं हैं। इनमें नयी अंकुरित पीढ़ी की काव्य साधना उसकी संप्रेषण और अभिव्यक्ति, उसकी चेतना और सजगता स्पष्ट रूप से सामने आ जायेगी। हमारा प्रयास रहा है कि हम ऐसे ही गीतों को प्रस्तुत करें जिनके सर्जकों में सम्भावनाएं निहित हैं जिनकी अभिव्यक्तियां नवीन हैं, सशक्त हैं और पथिप्रेरक भी हैं। इन गीतों के अवलोकन से भविष्यत् गीत का अनागत रूप भी संकेत देगा और इस धारणा को भी पुष्ट करेगा कि अत्यधिक बौद्धिकता के हिमायती जो कहते हैं कि गीत मृत प्राय: है या मृतावस्था में है वो महत् सत्य को अनदेखा करना चाहते हैं साथ ही इस विधा की पूर्ण जानकारी एवं संग्रह की पूर्णता के लिये हमने समीक्षा के अंतर्गत साहित्य की इस धारा पर निबंध भी दिये हैं जिससे इस विधा का सम्पूर्ण रूप पाठक प्राप्त कर सकें।

—सम्पादक

चंद्रमौलि उपाध्याय

मुझे बोने की साध

●

हरे भरे खेत, उड़े बादल की छाँह
मुझे बोने की साध !

तिलक इन्द्रधनुषी इन क्षितिजों के माथ
स्पृहा नयी नया सभी बदलों के हाथ,
सुखा-सुखा मन, धूसर पछुआ के साथ
यह पसीने की साध !

हरियाये पौधे, यह कजरायी पीर
गये हुए दिन लौटे खालों के छोर,
खेतों में डूबे पदचिह्नों के नीर
मुझे पीने की साध !

कटते सीमान्तों की ले-लेकर टोह
हर पकती बालों में जागे का छोह
प्रहरों की ड्योढ़ी से बाहर व्यामोह—
व्यथा खोने की साध !

●

कौशल मिश्र

नया गीत गाने दो

●

आने दो,
और हवा आने दो ।
रह रह घबराता मन ।
बसी हुई एक घुटन ॥

छाने दो
और घटा छाने दो ।
रोने से क्या मिलता ।
घाव नहीं, यों भरता ॥

जाने दो,
घुटन, दूर जाने दो।
मौसम है गाने का ।
सबको बहलाने का ॥

गाने दो,
नया गीत गाने दो
आने दो,
और हवा आने दो

●

कन्हैयालाल सेठिया

प्रणाम सो दीखे

गति का है उत्कर्ष यही यह
बन विराम सी दीखे !

त्वरित घूमता चक्र दृगों को
ठहरा सा लगता है
किन्तु क्रिया की निष्क्रियता में
परिणति हो जाता है,

अलस रहेंगे अलस, यथा यदि
बन न धाम सी दीखे !

मृत्यु असंगति नहीं, सहज यह
जीवन की संगति है
रति का मूल स्वभाव, पूर्ण हो
बन जाती फिर यति है,

वही साधना परम स्वयं जो
विगत काम सी दीखे !

कर्ता बनता सिद्ध कर्म ही
जब अकर्म बनता है,
मुक्ति नहीं कुछ और नाम यह
प्रज्ञा की थिरता है

अहम भावना यही महद् है
जो प्रणाम सी दीखे !

●

'अंचल'

जानकर अनजान बनता हूँ

मगर मैं हूँ कि सब कुछ जानकर अनजान बनता हूँ।

भटकते मोह की छाँहों भरी रस्टी हवाओं में
अभी तक गीत गाये जा रहा हूँ मग्न आशा के
समेटे हो समेटे प्राण में जलती शिखाओं को
कभी मुड़कर न पीछे देखता मैं हाय पिपासा के
कहीं कोई अचानक भी उठे फिर से कभी फिर से
अभी तक तो मरा सपना न मैंने एक दफनाया
लिए कितनी अबोली बोलती साधें दहे मन की
तुम्हारे बन्द घर की अर्चना करता चला आया
मगर मैं हूँ कि सब कुछ जानकर अनजान बनता हूँ।

कहाँ का अजनबी सुख बूझने मुझको नहीं देता
वही बातें पुरानी रोज कोई क्यों सुना चाहे!
वही पहली कहानी दूर से आवाज देने की
न अब नजदीक आने दें किसी की रोकती बाँहें!
कहाँ है छूट वह जो हर घड़ी जीवित मुझे रखती
न जाने क्यों कलेजा वंचनाओं से नहीं थकता
न जाने कौन अनजानी असंभव बात होनी है
कि मैं बेताबियाँ अपनी कभी कहते नहीं थकता।
मगर मैं हूँ कि सब कुछ जानकर अनजान बनता हूँ।

कहा करता अछूते अनबिंधे बेदर्द पत्थर से
मुझे देकर अजन्मा अर्घ तू प्रतिमान बन जाता
अटल निष्पन्द चरणों पर चढ़ाए शिर समर्पित को
अनामी कुछ क्षणों के वास्ते भगवान बन जाता,
कभी कम्पित हुआ है बध पक्षी की पुकारों से
अंधेरे की हथेली पर चमकता चाँद का पत्थर
कभी हैरान हिरणों के तरसते टूटते दम से
पसीजा है कहीं मृग-जल किसी मरुभूमि में क्षण भर!
मगर मैं हूँ कि सब कुछ जानकर अनजान बनता हूँ।



डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरुण'

उतरा मेरा अक्षर-अक्षर

जब गाया ध्यान तुम्हारा धर—
पंचम में धरती चहक उठी, सौरभ से महक उठा अम्बर !
जब गाया ध्यान तुम्हारा धर !

तुमको मैंने जिस दिन देखा—
अनुरागवती है मधु लेखा !
माया ज्यों अगहन-गंगा पर पूनम के शशि का बिम्ब उतर !

रस-धार बही, खुल गया गला,
उपयुक्त छन्द स्वयमेव ढला,
शशि-किरणों से चित्रित जैसे मीठे जल का निर्मल निर्झर !

ये नयन हुए चिकने चिकने,
ये प्राण हुए मकरन्द-सने,
कानों में अनहद नाद गूँजा पलकों पर उतरे स्वप्न अमर !

छा गई कल्पना-लता हरी,
घुल गई स्वरों में मधु मिसरी,
स्वर रोम रोम से यह फूटा— जग है सुन्दर, जग है सुन्दर !'

तुम से प्रेरित जो भी थी कृति—
उसमें थी भावों की अभिव्यक्ति !
छंदों मे गति, पद में संगति आ गई गीत में सहज-मुखर !

पाटल-पंखुरियों पर उज्ज्वल—
हिम कणिकाओं सा शुभ्र धवल
सीपी में मोती-सा झल-झल, उतरा मेरा अक्षर अक्षर !

सुकुमार रजत की रेखा से—
घन चित्रित हो उठता जैसे—
तुम जिन गीतों में झाँक उठीं बस गीत वही थे चिर सुन्दर !

जब गाया ध्यान तुम्हारा धर—
पंचम में धरती चहक उठी, सौरभ से महक उठा अम्बर !
जब गाया ध्यान तुम्हारा धर !

●

[illegible]मन १२/४

माखनलाल चतुर्वेदी

तुम चुप चुप आ जाना साथी

तुम चुप चुप आ जाना साथी

गिरिशिखरों को झुका झुका कर
आँखों में मनसूबे भर कर
प्राणों को सहलाना साथी !
तुम चुप चुप आ जाना साथी !

मन के मधु पतन पर क्षण क्षण
अंगुलियाँ दिखलाना साथी
काँधों तक बढ़ बढ़ आओ तब
इतना बोझ उठाना साथी !

दिन में किरणों चरण घुमाना
रातों में मुस्काना साथी !
तुम चुप चुप आ जाना साथी !

बिजली गिरे कि वर्षा उतरे
या कस कर बाधा पराये
तुम ढोलक की थापों पर उठ
रोज कजलियाँ गाना साथी

हरी फसल जब लद लद आये
खड़े खड़े इतराना साथी
मधर्मों के सीनों में आकर
यह घर-द्वार बसाना साथी ।

तुम चुप चुप आ जाना साथी !

●

बाता

श्याम भारिल्ल

कुछ नहीं है प्यार

और परिभाषा नहीं कुछ, सिर्फ यह है प्यार
चाँद छूने चला कोई, चूम लिए अंगार ।
कसमसा कर उफनता सा एक पारावार
दर्द है इस पार जिसके दर्द है उस पार,
प्राण अन्तर में, अधर पर सिर्फ हाहाकार ।
चाँद छूने चला कोई
कल्पनाओं में लिये से इन्द्रधनुषी रंग
खोजती आकाश-कुसुमों को अधीर उमंग,
खोज में जिनके खड़ी है शून्य की दीवार ।
चाँद छूने चला कोई ...
टूटता तारा मगर ज्यों अग्नि की रेखा,
जल रहा सा पंथ, जिसमें प्राण का लेखा,
कुछ नहीं है प्यार लेकिन बहुत कुछ है प्यार ।
चाँद छूने चला कोई, चुन लिये अंगार ...
और परिभाषा नहीं कुछ ।

विश्वनाथ

लजाओ यूँ न शेफाली

समेटो यूँ न अलकों को गुलाबी भोर की लाली !
लजाये चाँद ने ज्यों बादलों की ओट सी करली
सिमट कर रश्मियों ने बाहुओं में चाँदनी भर ली,
उषा को ढक रहा हो ज्यों सवेरे का धुंधलका सा
उमड़ते आँसुओं ने ज्यों नयन की नीलिमा ढक ली,
हटाओ तो ज़रा घूँघट कुँवारे लाज की लाली !
ज़रा सा और मुस्का दो ये कलियाँ फूल बन जायें
महक जाये चमन सारा ज़रा मौसम बदल जाये,
कसम उस एक सपने की जो रातों को जगाता है
नज़र भर देख लो यह पल न जाने लौट कब आये ?
गरज कर, झूम कर मचलो लजाओ यूँ न शेफाली !
समेटो यूँ न पलकों को कुँवारे लाज की लाली !
गरज कर, झूमकर मचलो गुलाबी भोर की लाली,
हटाओ तो ज़रा घूँघट, लजाओ यूँ न शेफाली !

शम्भुप्रसाद श्रीवास्तव

कटती है रात नहीं

चोरों के मारे है बुरा हाल बस्ती का,
उस पर भी आलम है मस्ती का,
बेहोशी से डूबे अवसर की बात नहीं।
आँख लगे बिना हाय कटती है रात नहीं!

जहाँ-तहाँ बिखरे हैं सारे अनमोल रतन,
तन उघार सोयी है गहनों से लदी दुल्हन
दरवाजों पर साँकल देने की बात नहीं,
सन्नाटा खतरे का द्योतक है ध्यान नहीं

द्वार का पहरुआ चिल्लाता है फाड़ गला
कौन सुनेगा उसकी आज भला,
रोज-रोज होती है रस की बरसात नहीं।
आँख लगे बिना हाय, कटती है रात नहीं।

दिन भर हैं डोल चूमे फूलों के अधरों पर,
एक दल बह गया समीरण की लहरों पर,
मधुपों के छोकरे यहाँ अक्सर आते हैं,
पत्तों के हाथ दिखा, सीटियाँ बजाते हैं

सुन्दरता नंगी है, बड़ी बेहयाई है,
लाज यहाँ किसको कब आई है,
कच्ची है कली, मत लुटते है पात नहीं,
आँख लगे बिना हाय कटती है रात नहीं।

चेतनता का सूरज उतराया कई बार,
कुत्साओं के मेघों ने पी ली ज्योति-धार
मन तो है दास कुछ चहेती इच्छाओं का,
किधर पड़े ठीक नहीं उल्टा रुख पाँवों का,

आये क्योंकर विवेक मिलती दुत्कार यहाँ
उपदेशक गये सभी हार यहाँ
सपनों ने कभी सुनी है सच की बात नहीं,
आँख लगे बिना हाय कटती है रात नहीं।

श्रीकान्त जोशी

दर्द शायद कम हुआ है!

आज मन शबनम हुआ है
दर्द शायद कम हुआ है।

फूल की ऋतु छा गई है
स्वप्न में गति आ गई है
हिम पिघल जल बन गया है
रूठना असफल हुआ है,

बात करने में नशा है
होश की हलकी दशा है
इस तरफ ऋतु, उस तरफ तुम
अब रहेगा कौन गुमसुम,

एक मुस्काते बाग ने
आशीष मुझको भी दिया है।
आज मन शबनम हुआ है
दर्द शायद कम हुआ है।

प्यार की भावुक नदी है
इन दिनों लगती भली है,

पाँव तक लिपटे सपन हैं
नृत्य में इतने मगन हैं,
डाल से पिक का निमंत्रण
आ रहा ऋतु-पत्रिका बन

हम नहीं सो पा रहे हैं
अश्व दौड़े जा रहे हैं,
कुछ नहीं करने का मन है
व्यस्तता इतनी सघन है

आज रुक कर रह गया हूँ
स्नेह पाकर झुक गया हूँ
एक अरसे बाद मैंने
बैठ कर पानी पिया है।

आज मन शबनम हुआ
दर्द शायद कम हुआ है

●

रोशनी के पाँव काँपे,
प्यार पथ को घाव नापे,
दर्दभरी याद ठिठुरी, गीत पथराने लगे हैं

●

धूप के आवेश का हर तन्तु तम का मुखापेक्षी !
टूटते परिवेश की हर स्वर किरण बीमार-सी है
रूप की हर पंखुड़ी पर गुमसुमी उन्माद उभरा
चेतना आकाश चुम्बी ढह रही मीनार सी है

अजगरी आयाम सर के
मोम सिमटे घाट घर के
बुलबुलें हो गईं बहरी फूल घबराने लगे हैं !

●

हर अंजोरी प्रार्थना का एक भी अक्षर छन्दित
संविधाएँ नाथ के विश्वास को स्वीकारती हैं
नीलमी सपने किसी के रोज गुमसुम लौट जाते
गुनगुनाती ड्योढ़ियाँ हर साँस को पुचकारती हैं

गुमसुमी आकुल प्रतीक्षा
फिर रही देती परीक्षा
लगन की यात्रा अधूरी, नयन बदराने लगे हैं !

●

प्राण को दुलरा रही है, कामना शास्त्र पंचो
बाफरानी घाटियों में काल-कुहरा टिक गया है
फरफराते पंख की अनगिन कथाएँ बोलती हैं
वेदना के हाथ हर रेखा सुनहरा बिक गया है

मोम देती है चुनौती
पवन को सहमी कपोती
तय हुई दूरी न पूरी,बाज मंडराने लगे हैं !

रघुनाथप्रसाद मोप

डोंगी मझधार नहीं देना

मनचीती साँझ मिले न मिले
बोझिल भिनसार नहीं देना,
सौगन्ध तुम्हें इन साँसों की निर्जीव गुबार नहीं देना।
सपनों की सोनाघाटी में
साधों के बिरवे धमिल पले
चुप-चुप मन के किस कोने में
बौरों को भाव-सुवास मिले
बौरों तो बौरों टहनों पर
फुनगी तक मधु का रेल-पेल
मधुवन मधु छने मिले न मिले, उन्मन पतझार नहीं देना।
बोझिल भिनसार नहीं देना।

चन्दा ने कोई चैन नहीं
लोटी कितने दिन सोमकिरण
छज्जे पर पाखी डोल गये
छिटकी चेतनता में सिहरन
हर लहर तृप्ति की पहुनाई
हर दाँव उम्र को उतराई
पूनम की डोर मिले न मिले, अँधियार पसार नहीं देना।
बोझिल भिनसार नहीं देना॥

जीवन के उफने ज्वारों में
मन का सुगना रह गया ठगा
जिस चोर मान-मनौती की
यह नवल मनुगहा थका लगा
हर मौसम है यों गुथा हुआ
हर द्वार पुकार लगायी है,
सुकुमार पगार मिले न मिले डोंगी मझधार नहीं देना।
बोझिल भिनसार नहीं देना॥

गिरिधर गोपाल

सुधि हुलसी फिर आयी

आज कहीं रतनार नयन में
श्याम बदरिया छायी ॥

मंगल तिलक बनी मस्तक पर
चिन्ताओं की रेखा
एक लहर धो गयी पुलिन से
वह विषमय विधि लेखा

गहरे डूबी व्यथा अभावों की
भर गयीं दरारें
आज खंडहरों की नगरी में
यक्ष-प्रिया मुस्काई ।

घाव बन गये फूल पग चुभे शूल
नखत से चमके
दाग चाँद के टुकड़ों से
आँसू मुक्तावत दमके

लगता पास कहीं फिर महक उठी
केसर की क्यारी
रोम रोम में आज देह में
दीपावली सजायी ।

द्वारे झालर टाँक
चित्र दीवारों पर अंकित कर
मन के सहलाने तक
किरणें पहुँची रुनझुन पग धर

जाग उठी सपनों की
बरसों सोई राजकुमारी
हर आहट पर सांस सेज से
देहरी तक हो आयी ।

●

शंकरलाल माहेश्वरी

नदी को देखो तो

दी को देखो तो सिन्धु को प्यासी है !
हमने कुछ ऐसी ही विपदाएँ पाली है !

चक्कर-सा भरमोला फिरता पवमान यहाँ
पगलामी ऐसी है छू देता जहाँ तहाँ,
स्वर बन कर बज उठता जो कुछ भी खाली है !
हमने कुछ ऐसी ही विपदाएँ पाली है !

स्वर में छिप बैठा जो मरुयानस का गायन,
फैलाई बाहों-सा करता है आवाहन
अस्फुट मनुहारों में चाहों की खाली है !
हमने कुछ ऐसी ही विपदाएँ पाली है !

●

सुरेंद्र उपाध्याय

पवनमा होले बहो

सूरज को फेंकी
चुरियां न मोरें
बिन फूले झरे ना सिरीस
झूमा के मपरे
बजरिया के झोरे
मैया की फसती मसोस
खनक की मोम गहो
पवन को होले बहो।
पोखों में डुबकी
झुरमुट में भटकी
घठरी चिरैया की टेर
विरहिन की पांखों में
बादर क टना '
न माए पिया भई अबेर
—कि टुक कुसमात कहो
पवन की होले बहो।
बगुला की मोरा की
कसेंगी न सरजे
न टूटे लहरिया की देह
आँगन की बछिया की
हीरक न डोले
न बिसरे सरैया को गेह
गगन को होले गहो
पवन को होले बहो।
खेतों के कूंड
सन बिछिए बजेंपे
फसियों की तड़केगी देह
माह की मावट
रोएं घुमेंगे
कपिमा सदकोता देह
—कि पीतम मान महो
पवन को होले बहो।

डॉ० रमेश कुन्तल मेघ

प्राणों की बांसुरी

मंजरी-मंजरी नहीं मिली छांव, री
कुहुक रही कोकिला भांवरी सांवरी

मंकुष मुहूर्तों के पलाशों पर फ्रेंक गए
पेड़ों के मुकुट लाल, लहरविषु छेंक म
वर्षों के हरसिंगार गिरे गिरे नये-न
निर्झर जो बहे—गए-गए-गए..गए-गए

रसेश्वर में घरी रिक्त मंच-मंच गाए
बिखर गई हारों की पांखुरी-पांखुरी

मनजाने कलियों की पलियों को झोंप
कोमल मृदुपंखवाह भटके मकझोर।
पोष्येय प्राण श्रेष्ठ तर्कों में उलझ
तर्क श्रेष्ठ अंतर की माया में सुलझ।
। ।

रस की नहीं सुनती मुग्ध मधुबातु,
बात,
ठूंठों में भटक रही प्राणों की बांसुरी

डा० रवीन्द्र भ्रमर

झूले हमारे द्वार

इन्द्रधनु
झूले हमारे द्वार
वन्दनवार !

फूँक दें रन-मन जगत की रीत का,
छाएँ नन्दन नवेली प्रीत का,
खिले महके
दो हृदय का प्यार
फूल बहार !

जोड़ लें विश्वास मन के पास था,
प्राण बाँधें प्राण स्नेह लता उगा,
झरे निमस
भाव पावस धार
मधु बौछार !

सुबह जागे मोर दिन भर कोकिला
हर घड़ी हो राग का सावन खिला
जगे जीवन की
मधुर झनकार
तार सितार !

एक तन मन एक वचन एक हो
एक सपने में समाएँ दो,
परस्पर
करते रहें शृंगार
मुक्ताहार !

इन्द्रधनु
झूले हमारे द्वार
वन्दनवार !!

मिला घास-आँगन को
हरसिंगार का सुहाग
झंकृत मन वीणा-तार
स्वप्न बने नव राग
पौ फटी डगरिया पर
साँस के घिरौंदे में प्राण का पियरवा
जाड़े की ठिठुरी हुई रात-सी उमरिया पर
फैल गई सुधियों के कुहरे की चादर।

तारों के फूल चुने
हो गई निहाल भोर
भ्रम झुमाये यौवन पर
बोल करें सब सभोर
हवा झुमाती बाली
संदली दुलाई से मनचली किरण कसी
मनचाही ओढ़ा-सी हरियाली पर डोली
करता है मोल देख सूरज सौदागर।

परिणय का प्रथम मिलन
कुमकुम-सी ठगी-ठगी
पूनो की पलकों में
चाँदनिया रात जगी
नींद भर गई उफान
देखते ही देखते साँस के झरोखे
प्रात झील से भागा ओस का सिंगारदान
हवा के हिरनियों के हाथ लगी झाँझर।

प्रकाश परिमल

सिल्कन विस्तार

सहज समर्पित है
तुमको
हरबार
हृदय की सुरभित-स्मृतियों का
सिल्कन विस्तार,
सँवारी यौवन की मिथियों का
सीमित सार,
सुकम्पित
मोम के शिखाओं का
नियमित ज्वार,

अचानक प्राप्त
किसी पलाश के वन में
बस संदल से
मेरे पावन प्यार !

नरेश सक्सेना

टूट गई कसमें

छूट गये सुख टूट गई कसमें ।
तुम्हें देख सारा पलाश-वन दहके नस नस में ।

संकोचों का पट हाथों से —
छूट गया टूट गया ।
एक भरोसा सारे मन का
बंजारापन लूट गया ।

अनगिनती मीठे परिचय अंकुराये मानस में ।

वातायन से झाँक, किसी
पम्हा की एक किरन ।
रातों रात बिगाड़ गई
सपनों का पास पलन ।

अधुरी भर बस में पहाड़ सी डूब गई रस्में ।

छूट गये सुख, टूट गई कसमें ।
तुम्हें देख सारा पलाश-वन दहके नस नस में।

ओ गूँगी हवा !
थकी दोपहरी !
ओ पीली शाम !
मुझे मत बुला !

जाने है साथ इस हवा के
शायद मधुमास कहीं मिल जाये !
मैं जिसकी गंध ओढ़ लूँ
ऐसा भी फूल कहीं खिल जाये !

तू भी चुप रह
तृष्णा बावरा !
आँचल मत थाम
मुझे मत छला ।

अट्टहास करता सन्नाटा
कहते हैं एक फसल कट गई ।
शायद आकाश बढ़ा हो
माटी तो एक परत घट गई !

कुछ भी मत कह
पुरवा साँवरी !
मैं हूँ बदनाम

पागल है धुला !
मुझे मत रुला !
मत बुला !

सूर्यभानु गुप्त

जिन्दगी हथूले में

दुपहर का सूनापन जैसे जोगी का मन ।
मन जैसे भटक रहा बनजारा, वन-वन ।।

धूप ने रचाए हैं हाथ पाँव गोरे
सन्नाटे को है कसम कोई कुछ तो बोले,
चिड़ियों ने भी क्या सब,
रख दिए हैं पंख रेहन ?

धुँधली पड़ती जाती है यादों की मेंहदी,
आँखें ज्यों शापग्रस्त हों सूखी हुई नदी,
कोई तो तोड़े अब खामोशी का दर्पन !

टूट-टूट जाती हैं हरी मुस्कराहटें
फूलों के मुखड़ों पर उग रही हैं सलवटें
हम उदास हुए और खत्म हो गया बचपन

हर कण है बेकरार वक्त के बगूले
कैद होके रह गई है जिन्दगी हथूले[1]
हर बशर है संजीदा, हर नजर में है सब ५न

१ हथूले—आकृतियाँ

त्रिलोकी प्रसाद

झुके झुके जो देखे कंगन

ऐसा क्या सम्मोहन जिससे —
कस जाते प्राणों के बन्धन ।

मेरे रोम रोम में तुमने
जाने कैसी प्यास बसाई
सूखे अधरों को लाचारी
आँसू से हो गई सगाई

ऐसी क्या पदचाप कि जिससे—
महक उठे मेरा नंदन – वन ।

शरमीली पलकों के नीचे
आवेगों का एक प्रभंजन
मौन समर्पण की भाषा में
साँसों का होता परिरम्भण

माथे की बिंदिया मुस्काती —
करने पीड़ा का अभिनन्दन ।

मिलना – जुलना भी जीवन में
मेरे लिए एक कमजोरी
शिखरों को ऊँचाई छूना
मेरे स्नेहिल मन की चोरी

ऐसा भी तो क्या शरमाना—
झुके – झुके जा देखे कंगन ।

जग की शंकाओं के डर से
चेहरे पर छा गई उदासी
नदिया कब रुकती बहने से
ओ मेरे मन के विश्वासी

उर की आग कहाँ छुपती है —
चाहे रोम लगाओ चन्दन ।

एक विवशता भरी जिन्दगी
कब तक कोई जी सकता है
केवल सपनीली किरणों को
कब तक कोई पी सकता है

बूँद – बूँद रीती गागरिया —
अमा का हो सका न वंदन ।

तू मन अनमना न कर

तू मन अनमना न कर अपना इसमें कुछ दोष नहीं तेरा
धरती के कागज़ पर मेरी तस्वीर अधूरी रहनी थी ।

रेती पर लिखे नाम जैसा मुझको दो घड़ी उभरना था
मलयानिल के बहकाने से बस एक प्रभात निखरना था ।
गूँगे के मनोभाव जैसे वाणी स्वीकार न कर पाये
ऐसे ही मेरा हृदय कुसुम असमर्पित सूख बिखरना था ।
कोई प्यासा मरता जैसे जल के अभाव में विष पी ले
मेरे जीवन में भी कोई ऐसी मजबूरी रहनी थी ।।

इच्छाओं से उगते बिरवे सब के सब सफल नहीं होते
सब कहीं लहर के जूड़े में अरुणारे कमल नहीं होते ।
माटी का अंतर नहीं मगर अंतर तो रेखाओं का है
हरएक दीप के हँसने को शीशे के महल नहीं होते ।
दर्पण में परछाईं जैसे दीखे तो पर अनछुई रहे
सारे सुख सौरभ की मुझसे ऐसी ही दूरी रहनी थी ।।

शायद मैंने गत जनमों में अधबने नीड़ तोड़े होंगे
चातक का स्वर सुनने वाले बादल वापस मोड़े होंगे ।
ऐसा अपराध हुआ होगा जिसकी फिर क्षमा नहीं मिलती
तितली के पर नोचे होंगे, हिरनों के दृग फोड़े होंगे ।
अनगिनती कर्ज चुकाने थे इसलिये ज़िन्दगी भर मेरे
तन को बेचैन भटकना था मन में कस्तूरी रहनी थी ।।

तू मन अनमना न कर अपना इसमें कुछ दोष नहीं तेरा
धरती के कागज़ पर मेरी तस्वीर अधूरी रहनी थी ।

●●

वीर सक्सेना

सीमायें तोड़ी हैं

मैं कृतज्ञ हूँ जितना भी अनुराग किया
इससे अधिक तृप्ति तुम कहीं भी कैसे—
शापित हूँ आजीवन प्यासा रहने को—
मैंने सागर की सीमायें तोड़ी हैं।

इतनी बार छला किरणों ने रूप बदल,
संशय होने लगा मुझे उजियारे पर,
जिस आभा से दीप्त तुम्हारा आँगन था
जिसने रोक लिया मुझको इस द्वारे पर;
मैं कृतज्ञ हूँ तुमने मुझे निहार लिया
दृष्टि प्रभा आलोकित करती भी कितना
तिमिर रश्मियाँ कैसे मुझ तक आने दे
तम की पहरेदार दिशायें तोड़ी हैं!

सौंपी है पथ की मर्यादा अंध हुई
थकने पर भी गति को नहीं छोड़ पाया;
संघर्षों में जब भी मिली पराजय तब
मैंने अपने संकल्पों को दुहराया
मैं कृतज्ञ हूँ तुमने मुझे पुकार लिया
सम्बोधन मिल गया आत्म-उद्बोधन को
अब तक भी वन्दना अधूरी है मेरी,
ध्वंस करने वाली प्रतिमायें तोड़ी हैं,

अपने सारे पुण्य तुम्हें अर्पित करता
मेरे पापों का यदि भार तुम लेते
तुम्हें राजपथ तक मैं पहुँचा कर आता
कुछ दिन पगडंडी पर साथ घूम लेते
मैं कृतज्ञ हूँ तुमने यह स्वीकार किया
जीवन तुम इसको अभिव्यक्त न कर पाओ
समाधान भले दे दे रूढ़ियाँ मुझे-
परम्परागत सभी प्रथायें तोड़ी हैं!

आँसू से जिस जीवन की भूमिका लिखी
मुस्कानों में उपसंहार नहीं होगा
अन्त नहीं होगा अस्तित्व बिखर जाये
कोई समझौता स्वीकार नहीं होगा
मैं कृतज्ञ हूँ तुमने मुझे निखार दिया
अपने मेरे साथ चलो भी तो कैसे ?
इस जीवन भर शायद नहीं सँवर पाऊँ
मैंने दर्पण की गरिमायें तोड़ी हैं!

मंगल सक्सेना

जैसे तुमने मुझे सम्हाला

कभी कराहे अमर किसी का भीड़ भरा एकाकीपन
मेरे गीतों जैसे तुमने मुझे सम्हाला, उसको भी सहसा देना !

कभी सिमट कर गगन किसी के नयनों में घुल जाए,
दिशा-दिशा से मौसम बरसे सुधियों-सा घुल जाए,
कभी किसी का दूर आँसू हो छमछमया भर जाए,
प्राण देह को मधु-मास में स बिना पुण्य तर जाए,
कभी किसी का, किसी मोद में छूपने को अकुलाए मन,
भूवन चाहो, जैसे मुझ पर आँचल डाला, उसको भी सहसा देना !

कभी अँजुरी भरी रहे पर विस्मृति डसे पुजारी को
कभी समर्पित नयनों से भी सूझे देख शिकारी को
कभी देवता की करुणा का इतना क्रूर प्रहार हो
सिप भर जाए सीसे मन में, अंग-अंग अंगार हो
कभी किसी के सहज हृदय पर अंकित हो गहरी सुम्बन
भस्मी चाहो जैसे मुझ पर किया उजाला उसको भी सहसा देना !

कभी किसी को रूँधी जिन्दगी मुक्ति गीत गाना चाहे
घर-घर घुमड़े परिवर्तन को आँगन में लाना चाहे
कभी किसी कुचले स्वप्न का एकाकी स्वर व्यंग करे
फुसलाती कसमों से सूझे बधिर व्यथा से वांग करे
कभी किसी की मर्मव्यथा सुलगाए तन-मन-जीवन
सजल निभाहो जैसे मुझ पर अमृत डाला, उसको भी सहसा देना !
कभी कराहे अमर किसी का— —   — —

श्रीगोपाल आचार्य

गीत कैसे गा सकूँगा

आँसुओं की जिन्दगी है गीत कैसे गा सकूँगा
बीन टूटे तार टूटो स्वरों के आधार छूटे
षड्‌ज पंचम बोले मध्यम रागिनी क्या गा सकूँगा
गीत कैसे गा सकूँगा !

स्वप्न टूटे स्वप्न के आधार छूटे
साथ छूटा प्राण भी अरमान टूटे
भग्न पदक्षेपों में कैसे रूप प्रतिमा ला सकूँगा ।
गीत कैसे गा सकूँगा ।
मेरे मधुमासों पे पतझड़ छा गया
सरस सरवर का कमल मुरझा गया
उजड़े आहत नीड़ में मधुहास कैसे पा सकूँगा ।
गीत कैसे गा सकूँगा ।

सियारामशरण प्रसाद

पियराई सरसों से

पियराई सरसों से
फूटा यह गीत
आओ रे मीत मेरे
आओ—

हौले हवा चलो
मुख पर गुलाबो रे,
हरी हरी चादर
बिछी आगमनो रे   अलसाये मन से
पियराई सरसों से
फूटा यह गीत
आओ रे मीत मेरे आओ



मधुसूदन साहा

चम्पई सांझ मुस्काई

केसर के गलियारे में चम्पई सांझ मुस्काई ।
पछिया ने आँचल भर कर
किरणों का रंग उड़ेला,
टेसू के आँगन में रच-
डाला कुंकुम का मेला,
क्षितिज-छोर के रक्तिम मुख पर छाई नई लुनाई ।
केसर के गलियारे में चम्पई सांझ मुस्काई ॥

महुए की डाली महकी
सुधियों का मन मदराया
पनघट के तट तक आकर
प्यासा पाहुन भरमाया
नदियों की लहरों पर लेती इन्द्रपरी अंगड़ाई ।
केसर के गलियारे में चम्पई सांझ मुस्काई ॥

गाँवों के घर आँगन पर
उतरी चंचल चाँदनियाँ
लोटीं तुलसी-चौरा पर
घृत-दीपक पर कामिनियाँ
चिलमन के पीछे से छिटकी दीपमालिका जुन्हाई ।
केसर के गलियारे में चम्पई सांझ मुस्काई ॥

ऐसा गीत न छेड़ो मन में
रोम रोम बन्धन बन जाये
पत्थर के इस मलबाये में
अबतक कोई बरात न ठहरी
रचा नहीं मंडप आँगन में
ली न किसी सिहरन ने फेरो

सा मंत्र न फूँको मन में
सुमन-सुमन मंथन बन जाये ।

राजानन्द

हर इच्छा कंचन बन जाए

बासंती उबटन मत लेपो
तन-मन पीला हो जायेगा
मेंहदी की चंचल सुगंध में
अनुरागी मन खो जायेगा
ऐसा यौवन न छेड़ो मन में
साँस-साँस चन्दन बन जाये ।

रूठ गई गर वंदनवारें
कंगन रीते रह जायेंगे
सपनों के तिनके बिखरेंगे
महल दुमहले ढह जायेंगे
ऐसा मत दुलराओ मन को
हर इच्छा कंचन बन जाये ।

❁

हिमानी

अँजुरी भर

अँजुरी भर प्यार तेरा
और यह जीवन मरुस्थल
चल रही लू जल रहा भू
जल रहे हैं ठूँठ हैं हैं

अग्नि का आधार अम्बर
नीड़ जाता उमड़ते घन
जेठ है आषाढ़-सावन
नयन निरखें हरित आँचल
क्षितिज तक विस्तार रज का
नहीं कोई मध्य पोखर,
किस तरह सरसे यह स्नेह कोंपल
और यह जीवन मरुस्थल—
आ कहीं से आ जलद रे
जो बरस कर ताप हर लें
पवन के शीतल झकोरे
ग्रीष्म को मधुमास कर दें
ज्योत्स्ना से स्नात धरती
हरित चूनर ओढ़ निकले
प्यास भीगी राग टेरे
झील में मधु नीर लहरे
और गागर जाय छल-छल
फिर नहीं जीवन मरुस्थल

प्रणजीत

रोशनी के पहरेदार हैं

भोर के सिपाही हैं हम—
रोशनी के पहरेदार हैं।
कंधों पे लिए हुए सूरज की पालकी
हाथों में थामे हुए बागडोर काल की
पलकों में पाले उस आगत के सपने
ढहेंगी दीवारें सब, सब होंगे अपने
मिट्टी को सपनों के हाथों सँवारते
एक नई दुनिया का चेहरा उभारते
चलते हैं साथ लिए किरणों का कारवाँ
बढ़ते हुए कदमों पे झुकता है आसमाँ
सांझ के बटोही हैं हम—
जिन्दगी के कामगार हैं।

निरंजनकुमार श्रीवास्तव

सांसों में समा रहा मोर

बाँध रहा मो रे पिया,
फागुन का गन्ध हिया,
नयनों में उभर रहे सपनों के डोर।
बहकी सी हवा चली डोल गई अमराई
मनचाही फूट गयी जाने क्यों तरुणाई,
अधरों से फूट गया
एक मधुर गीत नया,
प्राणों को कौन रहा जी भर झकझोर।
नयनों में उभर रहे सपनों के डोर।
पनघट पर प्यासी सा किसका यह गागर है?
सोच रहा कौन यहाँ कैसा यह सागर है?
तृप्ति नहीं मिलती है,
प्यास और बढ़ती है।
फिर भी इन सांसों में समा रहा भोर
नयनों में उभर रहे सपनों के डोर

विरहा के गाँव यह जादूगर कौन है?
नचा रहा सबको पर स्वयं बहुत मौन है।
कली यह अलसाई,
क्षण भर तक मुस्कायी,
फिर भी न दीख पड़ा कैसा यह चोर।
नयनों में उभर रहे सपनों के डोर।
कौन यहाँ निष्ठुर सा करता यह टोना है?
हाय! यहाँ जीवन भर खोना ही खोना है,
मीत नहीं कोई भी,
गीत नहीं कोई भी,
फिर भी इन कंठों से फूट रहा शोर।
नयनों में उभर रहे सपनों के डोर।

हरीश भादानी

प्यार का मातम मनाऊँ किसलिए

उम्र ढलती जा रही है दर्द की
एक दिन इसका जनाजा जायगा

यह वियोगिन रात गहरी और गहरी हो रही
सांझ की साँवरी दुल्हन घूंघट निकाले रो रही
मिलन के स्वर डूबती हारी-थकी ठंडी हवा—
मौन सपनों के सितारों की उदासी हो रही,

पल का पुरोहित आँसुओं से
याद का इक मसिया लिख जायगा—

गीत मत कहना उठी हैं अर्थियाँ अरमान की
गीत मत कहना फिरी हैं डोलियाँ अभियान की
साँस ही भारी रहा है जिन्दगी के ठोस पर—
गीत फिर देना न बोली गीत के अभिमान की

मिल न पाया प्यार ही जब
तो व्यथा का अर्थ क्या कर पायगा ?

रह गई हो पीर कोई भी अजन्मी तो जनमने दो
पिघलने से बचा अभिमान तो उसको पिघलने दो,
ज्यूँ-ज्यूँ तपा जितना तपा सोना तभी कुंदन बना—
इसलिए हो बस रहे विश्वास को कुछ और बसने दो

प्यार का मातम मनाऊ किसलिए
मैं जहाँ जाऊँ वहीं मिल जायगा—

शम्भूदयाल सक्सेना

श्रद्धामयी सुमनाञ्जलि

उसकी क्रीड़ा तुम्हारा मन मोहती है ।
उसकी क्रीड़ा को तुम्हारा चित्त तन्मय हो निहारता रह जाता है ।
उसके गीतों में तुम्हारा अस्तित्व डूब जाता है ।
उसके रुदन में तुम्हारा खोया हुआ स्वार्थ पुनः प्राप्त होता है ।
निःशेष अपनी क्रीड़ा क्रीड़ा गीत और रुदन के साथ वह
तुम्हारी ही है ।
उसकी निष्कलुष विपुलता और अल्हड़ जवानी तुम्हारे चरणों में
समर्पित श्रद्धामयी सुमनाञ्जलि है ।
तुम उसे भूमि पर ग्रहण करो ।
तुम उसे स्वच्छ प्रवाहित जलों में पाओ ।
तुम उसे दिव्य अन्तरिक्ष में धारण करो—उसके युग युग के श्रेय

अमरनाथ । सिन्धी

वरदान नहीं, वेदना

वेदना की अग्नि में तप कर जो वरदान मैंने पाया उसकी पुण्य-सुरभि को मैं झेल नहीं पाया उसकी आभा को संभाल नहीं पाया उसके मोहक विलास विभ्रम में मेरी साधना के पंख टूट गये आत्महारा हो मैं फिर से खोजने चला हूँ अपनी वेदना को ।

जीवन की सरिता ऊँचे-नीचे पहाड़ों के शिलाखण्डों से टकरा-टकरा महासंगीत की मूर्च्छना के स्वरों में बहकर साफ-सुथरे समतल पर आकर थहराने लगी है—संगीत का स्वर मन्द पड़ने लगा है । इसे फिर से ऊँची चट्टानों से टकराने के लिये इसकी अलसाई-विमनाई मादकता को झकझोरने के लिये संघर्षों के आँगन में घूम कर झूमने के लिये ।

जिस स्वप्न-यामिनी के क्रोड में से इस संगीनी धारा का उदय हुआ जिस वेदना के आकुल स्पन्दन में से जीवन का नया संगीत गुञ्जरित हुआ वही चाहिये मुझे, मेरे देवता ! वरदान ले लो और वेदना दे दो । मरण का यह वरण लौटा लो और जीवन का संघर्ष दे दो । यह जीवन विहीन राग ले लो और जीवन-संगीत की वेदना-वीणा दे दो ।

म कृष्णकिशोर

याद है खूब याद है

याद है खूब याद है — उतनी ही याद है
जितनी कि धरती का सत्य याद है।
माँ के सिरहाने मैं बैठा था मरण बैठा
था पाँवों के पास सपने बैठे थे। —
मौत लोरी सुना रही थी मैं प्रभाती गा
रहा था—कवि के स्वरों में स्वर भर
"बीती विभावरी जाग री !"
जीवन-मरण की खींचतान धूप-छाँह।
चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ चिन्तन के
क्षण—आँखों में पीड़ाएँ पीड़ित पीड़ाएँ—
प्रवाह, ममित प्रवोर।
मौत के स्वर में हथौड़े की चोट थी
प्रभाती के स्वर में पायल की रुनझुन—
घुंघुर।
माँ के प्यार औ' मौत की पुकार में
मौत खूब मर गई। माँ का प्यार
जीत गया।
उन की आँखें खोजीं मन रोया, जैसे
आँखें टूट गई हों। लगता भूल जाय
जैसे पंछी
उन बूढ़ी खोई आँखों में मरी आँखों में
सपने जुड़ते हैं धरती के—सबसे बड़ी उड़ान
तो वह है जब कि पंखहीन पक्षी के सपने
जुड़े हों धरती से और पंख फड़फड़ाते हों,
गगन-मंडल में।
सपने अब पाँव से उठ सिर के पास बैठ,
सिर सहला रहे। मन रो पड़ा— "माँ
निराश मत हो देख मेरी इन आँखों से देख।"

●

●

●

बद्रीप्रसाद पंचोली

आस्था का तार

प्रिय मेरी दुर्बलता को कठोरता का लक्ष्य न बनाइये। मेरे विश्वास को निर्दयता की कसौटी पर न कसिये। मेरी आस्था के तार को समय के छोरों (आदि व अन्त) से बांध कर न खींचिये। आशा की मुकुलित लता पर निराशा की लू न चलाइये। श्रद्धा के सावन आस्था के आनन्द घन तुम बरसो तो आशा-लता पुनः हरी हो जायगी, तुम्हारे आगमन से दुर्बलता भी मिट जायगी परन्तु विश्वास की कसौटी से चोखा हुआ और आस्था का तार ही टूट गया तो तुम्हें फिर कैसे पा सकूँगा। केवल विश्वास व आस्था के लिये ही एक बार काल के मस्तक पर आसीन होकर आइये।

सीता भटनागर

सीमंत के सिंदूर की

तुमने तो संकेत भरा नभ भेज दिया
पर पैरों में तो लाज का महावर लगा है न !
नयनों में मर्यादा का अंजन अंजा है,
चुप-चुप पलकों में परिणय-सपन के बास हुँ बसे
मेरी चुनरिया के आंचल में भांवरों की ग्रन्थि
दृढ़ है न !
मन पर समझदारी का पहरा भी है—खींची
और देहरी पर नैतिकता की लक्ष्मण रेखा है
ऐसे में यह संकेत भरा नभ कितनी पीड़ा देता।
समझ तो न सके,
आज वह मेरे सीमन्त के सिन्दूर की लाज रखने

प्रो० शालिनी

मधुस्नात रिमझिम

अलिन्द ! तुम्हारा कम्पित भुजन मुष्टि-पुट में जिस माया को भर गया उसी का परिणाम है मेरी सुहाग का बिखरा होना । सौरभ-स्नात वायु लहरियाँ तुम्हारे पथ को स्निग्ध करती है और मेरे भावों को मुखर । जब रेशमी-तन्तु के कोमल बन्धन को स्वीकार कर तुम आ जाते हो तब कैसे समेट कर रख सकती थी अपनी सुगन्ध ! सावनी मेघ-मालाओं की उस मधुस्नात रिमझिम में वह सुहाग अनजाने ही तुम्हारी हो गई ।

आकाश के मध्य सूर्य का प्रखर रूप विकिरित कर चिनगार सा गया । कुम्हला देने वाली उसकी ऊष्मा से सौन्दर्य और सुहाग को कैसे बचाऊं ? वो तब मेरी नहीं तुम्हारी थी ! मेरी कोमलता ही मेरी विवशता है, उसकी रक्षा क्या तुम नहीं कर सकते ! मेरी विवशता पर तुम्हारा अधिकार है ! तब रक्षा का भार तुम्हारे अतिरिक्त कौन लेगा ?......

अलिन्द व्यस्त था अपने ही गुंजन में । उसने अलिका की बात कहाँ सुनी ? और ...कलिका की पंखुरियाँ बिखर गईं बहार की ही प्रतीक्षा में ।

हरीश भिनाम

गोरड़ी चले

मालवी

गोरड़ी चले,
मन मोरड़ी चले,
मेंहदी भर्‌या हाथ है,
साजना को साथ है
झुपड़ली रातां में,
मीठी मीठी बातां में,
प्यार है पले,
गोरड़ी चले,

झमक झुमक बिछिया पे ताल है बजे,
भौंरा की बंसरी पे श्याम है बजे,
दिवला से बात मिले,
तरुवर से पात मिले,
छलिया को प्यार देख पाव है छले,
गोरड़ी चले ।

चंपो चमेली और जुही की कली
मीठा मीठा बागरा से फूल में ढली,
लटपट पग पड़े रे पड़े,
चाँदनियो ढले रे ढले,
देख देख जिनगी को मावसा टले,
गोरड़ी चले

अम्बर से स्वेद बूंद पाव है ढले,
पूरब में लाल लाल हींगलू घुले
चटक चटक कमल खिले,
भंवरा की पाँख खुले,
मदमाती ऊषा को रंग है घुले,
गोरड़ी चले ।

कल्याणसिंह राजावत

फूल-फूल रो मोल

मालण ! फूल फूल रो मोल करणो चोखो कोनी मे
कमळी कळी कळी रो तोल करणो चोखो कोनी मे

कळियां मैं मधु बाट चढ़ावै
भंवरां रो काया कळपावै
थारै घर रो घाट सजावण
दूत री मधु सूं हाट सजावै
सोमण ! बाग बाग सूं खोळ भरणो चोखो कोनी मे

गळी गळी बैठ्या सौदागर
बिलरा मिंदर उतरी भासर
घाट घाट पर मत जावै तू
मांडी माळा पांणो पासर
जोगण ! देव देव रो ध्यान धरणो चोखो कोनी मे

उमळा पाथर मैं सोबाळा
खोरी मागळ मागै ताळा
मन रा पापी तन रा तापी
हाथ उठावै जमवत माळा
भोळी ! मणां मणां रो मोळ चढ़णो चोखो कोनी मे

धरती माथै कांपण मावै
अम्बर गाजै छांवण मावै
मेळो लागै चुड़ै भावरी
झोमळ बाजै सायरां मावै
गोरी पिणघट पिणघट नीर भरणो चोखो कोनी मे

थांरी रमत बणी है धांखी
थां रै सावण कोनी बांणी
थारी मेणत मांटी सोनो
थां री काया चढ़गो पांणी
तेलण ! तिसा तिसा रो तेल भरणो चोखो कोनी मे

इक मूरत मिंदर मे धरसै
इक सरवर सूं गागर भरसै
इक घर तेल चढ़ा चोबणियै
इक आंगण मैं मरतण करसै
नचवण ! गळी गळी मैं रास रमणी चोखो कोनी मे

अमन

मां रो बुलावो

मोरीली धरती रो वासी एक सनेसो ल्यायो है,
पण बूढी मत मानै माळ घणीमान बुलवायो है।

कै'वायो है—"भळो-भळक हूं पडो एक-रो खाय गिरूं,
पाळमोळो हूं पान ज्यूं झड़ बाज म्हूं का कां'स म्हूं,
काळी तोड़ी कमर, उमर भर गाळो रो रम्भायो है।
मां घणीमान बुलवायो है

मामास्या रो मावड़ भूखी तिस मरती करळावै रे,
पाळम्बम बस्यो परदेसां पाणीड़ो कुण प्यावै रे?
कुण टंकवाळ? बडे विसावर घर स्यूं घणो सवायो है।
मां घणीमान बुलवायो है

जाखोणे सळपळ रो मां रो कोसो खोटो मोस बटै,
डिग्यळ बोल सिकायत हाळी माथ हुई मसाबोल घटै,
होट सीड़ बोलो र माथै पोरायत बैसायो है।
मां घणीमान बुलवायो है

यो किरोड़ बण र बीतो मां मास सिपूतो कै'वावै,
रजपूट री घणियाणी स्यूं गोमा गोमोपो करवावै,
एकठर माय 'र वेस माय में के-के नहीं दिखायो है।
मां घणीमान बुलवायो है ......

मा मायो तो पाड़ोसण मिस मेरो कुछ बिगोवैलो,
'दूध पाटग्यो'—मा सुणतां ही बूढो आंस्यां रोवैलो।
इतरो मत कै'वायो बेग—'कुळ नै काट लगायो है', ।
मां घणीमान बुलवायो है

सुदामा

पणिहारिण सूं

पणिहारिण ! सिर पर थारै फूटरी फरीं थारी सी झिलमली झमरख भरी ऊजळी गागर ! तू निधड़क नचीती हुवा रो बिना सामरो लियां वाता करती–नै परवा री–मस्त मगरी मटकती मराळणी सी थारै लियां । मजाल गागर नै हळको सो हलको ही धाम ध्यावै ! थोड़ो सो झमरख ही झळाक उठै चढै ही ! धन है थारी साधना पणिहारिण ! धन !

पण ठ'र पणिहारिण ! ठैर ! एक बात करणी है थारै सूं ! ई गागर रा ही म्हारै ही रास्तै री एक पन्थी हूं—पर ईं गागर हो मैं हिम्मत करी है बात करण री थारै सूं—बुरो मत मानै पणिहारिण ।

थारै दाईं म्हारै सिर पर भी भार है—पर थोरो छोटो मन ही डोलो पड़ पणिहारिण—थामतां-थामतां म्हारा हाथ दूखण लाग ज्यावै–म्हारो पुरो पग डोलै है पणिहारिण !

ईं गागर हो तनै पूछूं—थारी भार हळको करण री का साधना थीं मनै ही बता क्यांस हूं ही थारै दिसा निधड़क नीचो मस्त मुळकतो चाल सकूं । थारो उपकार मानसूं पणिहारिण ! उपकार मनै ही सिखा थारी साधना ।

नारायणदत्त श्रीमाली

बैरण रातड़ी

सुण रे ! डिकळा बावड़ी
पा म्हारी बैरण रातड़ी
स्याव पिया रै माळीयां म्हनै हिचकी आवै घड़ी–घड़ी

हिरदै नै समझा दै तो गैणा झमझम मोर बहातो
मांस्यां भीठ मनाऊं तो हिवड़ो तड़क तड़क रै जावो
बाट जोवतां दिनड़ो काढूं, मन समझावां रातां
बिरै–पवन में प्रेम मम भर [illegible] गै पपकातां
मांस फरूकै बैयारां सूं मोळू मारी चाकरी ।

जोबण-ताळ भबाभब भरियो हीरा जोर पताळो
मीर मजूको सभा पंछी गिरगु फिरगु फिरखावै
मेठी पाळ कठा लाख पां सूं, करली क निगरांणी
पंछीड़ा पातां में दिपळा सूं भोळी पण बांणी
दो राटो हिव मम्मी छोड़ गी सजन सिधारया चाकरी ।

कई बार मिरघू मांई तो बातां में बिलमाटी
इण छायां मे गात पिया मैं झणै साय लगाती
मम्मी सूं पग्यां पातो उणरी म्यांन राखती देस्यूं
तन–मन दे देस्यूं पण जोबण साय कठा सूं देस्यूं
दिवमा बीरा ! छाय वई सूं सें'र म्याव री चाकड़ो ।

काव्य-शास्त्र और गीतिकाव्य

डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित

गीतिकाव्य के सन्दर्भ में काव्यशास्त्र की मान्यताएं जितनी थोथी साबित हुई हैं उतनी शायद किसी और काव्य-विधा के सन्दर्भ में नहीं हुई। गीतिकाव्य को विशेष साहित्य शास्त्रीय सीमाओं में बांध कर रखने के संभवतः सारे प्रयास विफल हुए हैं और काव्य की इस विधा ने बराबर उन मान्यताओं के विरुद्ध सिर उठा लिया है। शायद यह बात एक वर्ग के लिये कुछ विस्मयकारक प्रतीत हो किन्तु यदि सभी बातों के विस्तार में न जाकर केवल गीतिकाव्य को कविता मुक्तक और काव्य के अन्तर्भूत निश्चित भेद के साथ रखकर भी देखें तो इस कथन की सत्यता प्रमाणित हो जायगी।

इस विषय में दो राय नहीं हो सकती कि गीतिकाव्य जैसी किसी काव्य विधा का अपने यहां के काव्य-शास्त्र में कोई उल्लेख नहीं है। इस संज्ञा का प्रचार हमारे यहां विदेशी "लीरिक" शब्द के आधार पर ही हुआ है और प्रायः वहीं के पढ़ाये-पाठ को पुनःसमझकर हमने अपने यहां उसके स्वरूप आदि की चर्चा में भी रस लिया है। यह सब देखते-सुनते अचानक ही हमारे यहां के कुछ काव्य-पुरोहितों को इस देश में गीतिकाव्य की अखण्ड परम्परा प्रवाहित होती मिल गई है और संस्कृत से लेकर प्राकृत और अपभ्रंश आदि की अनेकानेक विभिन्न श्लोकमयी रचनाओं के माथे गीतिकाव्य का तिलक लग गया है चाहे फिर वे अमरुशतक की पंक्तियां हों चाहे ऋतु-संहार की हों अथवा शाकुन्तल मालती-माधव और और और नाटकों में आई हुई हों। बात बढ़ते बढ़ते मेघदूत और गीत-गोविन्द से शुरू हुई थी और बढ़ गई बड़े-बड़े पोथों तक। ऐसा केवल इस देश में ही नहीं हुआ इस संज्ञा के जन्मस्थान में भी हलचल दिखाई पड़ी। बाउरा और जान ड्रिंकवाटर जैसे महाशयों ने लीरिक को उसके विशिष्ट स्वरूप से

मुक्त करके उसे कविता का समानार्थी घोषित कर दिया। कविता न कहा लीरिक कह दिया। गीतिकाव्य इस तरह काव्य का एक भेद मात्र न होकर उसी का दूसरा नाम मात्र हो गया। लेकिन उक्त दोनों महानुभावों के कथनों में इस पर्याय-धर्मिता का विशेष कारणों से ही उल्लेख हुआ है सामान्य रूप में दोनों को पर्याय स्वीकार नहीं किया गया है। किन्तु उस विशेष कारण की उपेक्षा करके आकाश महाशय की उक्ति के सहारे पर हमारे यहां तुलसीकृत रामायण तक में गीति भावना की चर्चा चलाई गई है, लेकिन हुई कि स्पष्टतः उसे गीति-काव्य नहीं कहा गया। डा० विनयमोहन शर्मा कृत गीतगोविन्द के हिन्दी रूपान्तर की प्रस्तावना के लेखक डा० सिद्धेश्वर वर्मा ने "अंग्रेजों" की परम प्रामाण्य पुस्तक 'विश्वकोष—१४वां संस्करण—' से उद्धरण देते हुए इसी विषय का प्रतिपादन किया है। डा० वर्मा को इस बात पर आपत्ति है कि कवि की आत्मानुभूति को मौलिक आधार मानने के कारण तुलसीकृत रामायण और सूरकृत पद गीतिकाव्य से बहिष्कृत कर दिये गये हैं। यदि जिस कविता में कवि की अहंबुद्धि न भी हो, उसमें भी गीति भावना मान ली जाय तो इसमें क्या आपत्ति है ? जब वास्तव में यह देखा गया है कि तुलसीकृत रामायण आदि जैसी कृति में कवि की अहंबुद्धि दिखाई न देने पर भी वह घर-घर में गाई जा रही है तो उसमें गीति भावना के अभाव की कल्पना का हेतु क्या है ? क्या भारत के किसी प्राचीन अथवा मध्यकालीन साहित्यिक ने भी इस अभाव को अनुभव किया अथवा दरशाया है ? यदि नहीं तो क्या इसलिए कि अंग्रेजी साहित्यिकों ने लिरीकल अथवा गीति काव्य को कवियों की आत्मानुभूतिमूलक बताया है ? परन्तु तमाशे की बात है कि जिन अंग्रेजों की उक्तियों को महामन्त्र मानकर हम अपनी बुद्धिमत्ता द्वारा अनेक उपसंहारों का प्रपंच खड़ा कर देते हैं, उन्हीं अंग्रेजों की परम प्रामाण्य पुस्तक "विश्वकोष"—१४वां संस्करण—ने लिरीकल काव्य के इस उपकरण का सर्वथा त्याग कर दिया है। वहां स्पष्ट लिखा है " कदाचित् संभवतः पहला रस पण्डित था जिसने सर्वथा स्पष्ट देख लिया कि लिरीकल काव्य स्वयं कविता मात्र का दूसरा नाम है जिससे यह सिद्ध होता है कि लिरीकल कविता में कविता के सारे भाग का उसका व्यक्तिगत तथा भावात्मक पक्ष का अन्तर्भाव है। इसलिये पाश्चात्य समालोचना कृत काव्य-विभाजन कवितागत विषय के लिए वास्तव में किसी काम का नहीं है। हम कथात्मक अथवा प्रबन्ध-काव्य की सत्ता को मानते हैं हम मानते हैं कि नाटक भी कविता है, परन्तु जब इन दोनों में व्यक्तिगत भाव प्रबल होता है तब

वह लिरीकल तक आ पहुँचता है। परन्तु शुद्ध प्रबन्ध तथा शुद्ध नाटक के अतिरिक्त प्राय: सब कविता लिरीकल होती है।"

डा० वर्मा ने उद्धरण तो दिया किन्तु उस उद्धरण की न तो शब्दावली पर ही ध्यान दिया न उसके तात्पर्यार्थ पर। गीतिकाव्य तथा काव्य को पर्याय मानने का बटलर महाशय का एकमात्र अभिप्राय यह है कि उसके द्वारा संगीतमयता को काव्य का अनिवार्य तत्व बताया जा सके। संगीतमयता काव्य का अनिवार्य तत्व है और आत्मनिष्ठता उसका विशिष्ट गुण। गीतिकाव्य में यही आत्मनिष्ठता या व्यक्तिगत अंश और उभर आता है इसी गुण के कारण डा० वर्मा के द्वारा स्वीकृत 'प्रमाण्य पुस्तक' में ही इसी उद्धरण में शुद्ध प्रबन्ध शुद्ध नाटक और कथानक की सत्ता को अलग-से स्वीकार किया गया है तथा कहा गया है कि जब इन दोनों में व्यक्तिगत भाव प्रबल होता है तब वह लिरीकल तक आ पहुँचता है। इस बात पर ध्यान दें तो शायद यह कहने की आवश्यकता न हो कि "तुलसीकृत रामायण" में उसके भर भर आये जाने के कारण "गीति-भावना" भले ही हो उसके प्रबन्ध-रूप के कारण उसमें गीतिकाव्यत्व नहीं है। निश्चय ही गीति भावना और गीतिकाव्य होना दो चीजें हैं उन्हें एक ही मानने के हठी लोगों से कोई क्या कहेगा ? साथ ही इस तर्क का उत्तर देने की आवश्यकता भी नहीं है कि भारत में कभी किसी ने गीतिकाव्य का नाम लिया था अथवा नहीं या कि कभी किसी ने अहंवृत्ति के प्रभाव को अनुभव किया और दरशाया था अथवा नहीं। जो काव्यरूप ही कभी भारतीय मस्तिष्क में नहीं उभरा उसके तत्वों का विश्लेषण-परीक्षण भी कैसे होता ?

हम यहाँ 'तुलसीकृत रामायण' को गीतिकाव्य मानने से इसलिए इनकार करते हैं कि उसमें प्रबन्धात्मकता साफ दीख पड़ती है इसलिये इनकार नहीं करते कि उसमें अहंवृत्ति या आत्मानुभूति का प्रकाशन नहीं है। गीतिकाव्य के संबंध में निश्चय ही यह एक भ्रामक धारणा प्रचलित है कि उसे अनिवार्यत: आत्मानुभूति का प्रकाशक होना चाहिए, या कि वह होता है। आत्मानुभूति यदि वैयक्तिक स्तर के सुख दुःख का बोध है तो केवल उसका प्रकाशन गीतिकाव्य का निर्णायक नहीं बन सकता। आत्मानुभूति यदि वैयक्तिक सुख-दुःखातिरिक्त किसी ऐसी वस्तु का नाम भी है कि जिससे

कवि की विषयगत तन्मयता की सूचना मिलती हो तो उसे गीतिकाव्य का एक प्रकार स्वीकार किया जा सकता है। हम केवल वैयक्तिक सुख या दुःख में ही डूबते हों ऐसी बात तो नहीं है, बल्कि कभी प्रकृति का सौन्दर्य हमारे लिये सुखकारी सिद्ध होता है तो कभी देश पर बलि जाने का उत्साह ही हमें मग्न करता है। कभी किसी की रूप छवि ही हमारी आँखों के माध्यम से हमारे हृदय में उतर और बस जाती है और कभी किसी उत्सव को देखकर ही हमारे मुँह से दो बोल फूट उठते हैं। आत्मानुभूति का कोई एक *ही स्थिर रूप नहीं है, अपितु किसी भी वस्तु दृश्य अथवा घटनादि को पूर्ण संवेदन के* साथ हृदय की निजी से निजी परतों में अनुभव करने का नाम ही आत्मानुभूति है और जहाँ आत्मानुभूति है, तन्मयता है वहाँ भावों का उद्वेग संगीत की तरलता में आपसे-आप बह जाता है गद्य की धाराओं में प्रवाहित नहीं होता। भावोद्वेग सामान्यतः अलंकारों और भाषा-सौन्दर्य के उपकरणों की राह नहीं देखता किन्तु जिनका मनोवेग कुछ अधिक तीव्र है, जिनकी वाणी साधारण रूप में भी औरों से कुछ विशेषता ग्रहण कर चुकी है उनके काव्य में इस भावोद्रेक में भी कुछ अलंकरण, कुछ कौशल आ ही जाता है। मीरा के भावपूर्ण पदों और महादेवी के सघन कवित्वमय गीतों में इसीलिये अन्तर है, मीरा सीधे और सहज बात कहना जानती है और महादेवी रूपकों में और प्रतीकों में लपेटकर ही वाणी का विस्तार कर पाती है। अनुपाततः इसीलिए, मीरा का दुःख स्थिर बताया जा सकता है। इस तरह आत्मानुभूति केवल कलात्मक या सहज रूप में ही प्रकट नहीं होती बल्कि भाव के भी अनेकानेक स्तर ग्रहण करती चलती है। यही कारण है कि गीतिकाव्य के अन्तर्गत केवल प्रेमगीत या शोकगीत ही स्वीकृत नहीं हुए बल्कि स्तुतिपरक वर्णनात्मक घटनात्मक आदि अनेक प्रकार के और भेद भी स्वीकार किये गये हैं। इस दृष्टि से न तो सूरकृत पद ही गीतिकाव्य से बहिष्कृत किये जा सकते हैं न विद्यापति के पद—जिनमें कृष्ण-राधा के नखशिख-सौन्दर्य और अभिसार का वर्णन है—ही बहिष्कृत किये जा सकते हैं। न विनयपत्रिका और गीतावली को तिरस्कृत किया जा सकता है न रेडियो के आधुनिक गीतों को। इन सबको एक-साथ स्वीकार करने का एक परिणाम यह कि गीतिकाव्य के सम्बन्ध में प्रचलित यह धारणा कि यह अन्तर्वृत्ति-निरूपक काव्य है और उसे बाह्यार्थ-निरूपक काव्य से सर्वथा अलग *रखा जा सकता है अनेकांश में खण्डित हो जाती।* एक ओर तो इस बात के कहने की आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि पहले ही गीतिकाव्य के जितने प्रकार साहित्यिकों के बीच सम्मानित हैं वे इस बात के प्रमाण हैं कि उसे किसी एक वर्ग में रखना सम्भव या उचित नहीं है और आत्मानुभूति के स्वरूप को सभी प्रकार समझने की आवश्यकता है।

अन्तर्वृत्ति और आत्मानुभूति के प्रसंग से थोड़ा अलग हटकर गीतिकाव्य के सम्बन्ध में प्रचलित एक अन्य धारणा और विचारणीय है। जिस तरह यूरोप में गीतिकाव्य को काव्य का पर्याय कहते हुए कुछ लोग दिखाई पड़े उसी तरह उसे मुक्तक का पर्याय मानते हुए भी। डा० रामअवध द्विवेदी ने अपनी पुस्तक "साहित्य रूप" में गीतिकाव्य को मुक्तक का समानार्थी ही बताया है। उन्होंने गीतिकाव्य के अन्तर्गत परिगणित भेदों को ही मुक्तक के अन्तर्गत रखा है। उन्होंने लिखा है—'मुक्तक पारिभाषिक नाम है और इससे समस्त भेदों का बोध होता है तथा प्रगीत गीत इत्यादि उसी के भेद हैं। इस दृष्टि से मुक्तक और लिरिक समानार्थी सिद्ध होते हैं।" पृ० २१५

उक्त कथन में 'समानार्थी' शब्द से यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि गीतिकाव्य का अपना कोई स्वरूप नहीं है, बल्कि उसका इतना ही तात्पर्य नहीं है कि वह मुक्तक के ही एक भेद के रूप में है और यदि गीति मुक्तक कहें तो उससे चौंकना नहीं चाहिए। मुक्तक एक व्यापक संज्ञा है और गीतिकाव्य उसका एक भेद मात्र। भेद में भी अपने पृथक और विशिष्ट लक्षण हो सकते हैं जैसे कि गीतिकाव्य में हैं भी। मुक्तक के अनेक रूपों में हमारे यहां के सवैया घनाक्षरी दोहा आदि सभी प्रकार के छन्द आ जाते हैं और पुराने गायकों से सुनिये तो दोहा भी संगीत में चमत्कार से आप सुना सकेंगे। लय का प्रभाव तो अब नई कविता में भी स्वीकार नहीं किया जाता पर उनमें कैसे स्वीकार किया जा सकता है? अतएव संगीत की इस स्थिति मात्र के आधार पर सवैया आदि को भी गीतिकाव्य मान लेने की भ्रान्ति बहुत संभव है यदि मुक्तक और गीतिकाव्य को समानार्थी मान लिया जाय। किन्तु वास्तविकता यह है कि ये छन्द अभी तक संसार चातुर्य घटना-वर्णन आदि के काम में ही आए हैं अथवा प्रकृति का तटस्थ वर्णन ही इनमें हुआ है। ऐसी दशा में यह संभव नहीं है कि इन्हें गीतिकाव्य की संज्ञा दी जा सके। अतएव गीतिकाव्य और मुक्तक का भेद बनाए रखना ही उचित है। हां गीतिकाव्य मुक्तक का ही एक भेद है, इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं है।

गीतिकाव्य के स्वरूप सम्बन्ध में विशेषतः उसके भेद-वर्गीकरण को लेकर, अनेक विवाद प्रस्तुत किये जा सकते हैं, और साथ ही पूर्वोक्त प्रश्नों के संबंध में भी शंकाओं का अवकाश हो सकता है। यहां हमारा उद्देश्य किसी निर्णय की घोषणा करना नहीं है, अतएव हम केवल तीन प्रश्नों को उपस्थित करना यहां पर्याप्त समझते हैं। "काव्यशास्त्र और गीतिकाव्य" शीर्षक से जिन्हें पूरे विस्तार की जानकारी का भ्रम हुआ हो उनसे मैं क्षमा चाहूंगा और प्रकाशित ग्रंथों का सहारा लेने का आग्रह करूंगा।

●●

नए गीत : सम्भावनाएँ

चन्द्रमौलि उपाध्याय
प्रकाश परिमल
शेरजंग गर्ग

नयी कविता अर्थात् नये भाव बोध वाली कविता अर्थात् नये मूल्यात्मक परिवेश को भाषा देने वाली कविता अर्थात् वह कविता जिसकी आधार शिला नव मानवीय संवेदना की बिम्बात्मक अभिव्यंजना है बहुत थोड़े अर्थात् दो चार कवियों में समर्थ होकर प्रतिफलित हुई है। यदि डा० लक्ष्मीनारायण लाल सिर्फ निर्मल वर्मा और रघुवीर सहाय को नया कथाकार मानते हैं तो निश्चित रूप से शमशेर और केदारनाथसिंह जैसे दो चार सशक्तियों को छोड़ कर शेष नये कवियों की लम्बी पंक्ति सिर्फ [illegible] है। यहां तक कि कितनों को सिर्फ यह मालूम है कि गद्य तोड़कर लिखने का अर्थ नयी कविता है। ठीक यही स्थिति नये गीतकारों में भी है कि वे 'मन नहीं लगता तुम्हारे बिन' को एक पंक्ति में लिखना पुरानापन और कभी को तोड़ कर 'मन नहीं लगता

तुम्हारे बिन।

दो पंक्तियों में लिखने में 'विशिष्ट' नयापन समझते हैं। दोनों ओर गड़बड़ है। फिर भी नये कवियों की वह लम्बी पंक्ति, जो अन्ततः रचना करने के लिये सामर्थ्य लेकर पैदा ही नहीं हुई गीतों और गीतकारों को असामयिक और 'मॉडर्न' कहने लग गयी है जिसकी वजह इस सिलसिले में ज्यादा मुखर है। और यह सारा आक्रमण नये बोध के अर्थ के पीछे होता है। फिर भी आक्रमण बुरा नहीं है— क्षीणा यतः निष्कर्षणा भवन्ति। बुरा यह है कि इनसे नये गीतकार की आस्था जगह जगह से दरकती है और वह रात दिन इस चिन्ता में रहता है कि नये गीत में 'संत्रास' और 'यंत्रपुरुषी' जैसी कौन कौन सी बड़ी मूर्तियां लाकर गूँथे कि कम से कम लोकगीतों या लोकतत्वों के करीब तो पहुँचे क्योंकि इसीलिये नेता ठाकुर और केदारनाथ सिंह प्रसिद्ध हो गये। फिर भी लोकविशिष्टता सिर्फ एक पहलू है और वह नये भावबोध के सिलसिले में न आकर अलगाव

के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में (क्लासिक के विरुद्ध नहीं रोमैंटिक के विरुद्ध रोमैंटिक की प्रतिक्रिया) नयी कविता और नये गीतों में अवतरित हुई है। और शायद लोकतत्त्व-प्रधान नयी कविता और गीत अपनी समकालीन अन्य रचनाओं से अधिक सफल रहे हैं।

शायद यह अत्यन्त प्रशंसनीय और बड़ा ख़ास तरीका है कि कोई नया गीतकार पहले अपने सामने 'नये गीत' की परिभाषा रक्खे नयी कविता से उसका तालमेल बैठाये और तब गीत लिखे। दशकों से लेकर इधर लिखे गये तमाम गीत भाषा, सौंदर्य बोध तथा अभिव्यंजना की दृष्टि से छायावादी गीतों से भिन्न रहे हैं। और यदि वे भिन्न हैं तो श्रीकान्त वर्मा जैसे लोगों को उन्हें नया कहकर स्वीकारना चाहिए।

अब रहा नये गीत और नयी कविता का अन्तर कहाँ है?—जैसा प्रश्न। गीत अत्यन्त व्यक्तिनिष्ठ अभिव्यंजना हुआ करता है जो कोमल संगीत और संगीतात्मक होने के कारण व्यक्तिनिष्ठ यथार्थ को बड़े रूमानी और स्वप्निल धरातल पर पकड़ता है। निस्संग और तटस्थ होना उसके लिये कठिन है। नयी कविता का आत्यन्तिक यथार्थ और उससे उत्पन्न उसकी कलात्मक निस्संगता या तटस्थता का गीतों में निर्वाह ही वास्तव में नये गीतकार की समस्या है। निस्संदेह नयी कविता ही छायावाद की सही प्रतिक्रिया है अर्थात् रोमैंटिक के विरुद्ध यथार्थ की प्रतिक्रिया और बड़ी प्रतिमाओं के विरुद्ध छोटी प्रतिमाओं की प्रतिक्रिया। इसके विपरीत नये गीत ने छायावादी गीत के विरुद्ध रूमानी स्तर पर ही (सिर्फ दूरता के विपरीत 'लोकल' होकर) प्रतिक्रिया की है और शायद इससे अधिक इस विधा की सम्भावना ही नहीं हो सकती। यों कुछ ऐसी नयी गीत कथा रचनाएं भी लिखी गयी हैं जिनमें रोटी बेटी की समस्या को अभिव्यक्ति दी गयी है किन्तु उसका अतिरेक 'मार्चिंग सॉन्ग' जैसा ही समझा जा सकता है।

नयी कविता की नींव बिलकुल साफ है अर्थात् अब नये संदेशों की विदाई दिखाई पड़ रही है। इन कविताओं पर से कवियों का नाम हटा दीजिये तो सारी कविताएं किसी एक कवि की लिखी हुई सी लगती हैं। और यहीं यह साफ हो जाता है कि नयी कविता है पश्चिम की नकल जो यह संसार की सारी भाषाओं में चल रही है। और अब चूँकि पश्चिम में फिर से छन्दबद्धता उभर रही है, अतः यहाँ भी छन्दबद्ध रचनाओं की आशा अपने चरण के रूप में करनी चाहिये। फिर भी अगर कवि जहाँ तक आ [illegible] है वहाँ से लौटेगा तो नहीं ही। आयगा आगे। और आगे जाने में वह नयी कविता की [illegible] तक की उपलब्धि को पचा कर जायगा। शायद नये गीत ही नये साहित्य की अगली

सर्वोपरि सम्भावना है, क्योंकि प्रतिभाएं अब भी दूसरी और तीसरी पीढ़ी की ही मैदान में हैं। और नया गीत ही नयी कविता को जानेगा पचायेगा। इधर कुछ बहुत नये कवियों ने यह काम करना आरम्भ भी कर दिया है— नाम लेना ठीक नहीं नये आदमी को अहंकार से बचाने के लिये।

फिर भी नये गीतकार के लिये नयी कविता की यथार्थवादी असम्पृक्तता सुसाध्य नहीं, अनिष्ट होगी और स्खलना सम्भावित होगी। क्योंकि हमारा यथार्थ है अर्थ संघर्ष और विकृत सेक्स और इन दोनों के चलते कुण्ठा टूटन, जिजीविषा या आक्रोश आदि। अर्थ संघर्ष और सेक्स को लेकर नये साहित्यकारों में दो खेमे भी हैं। बल्कि प्रगतिशील खेमा अब राष्ट्रीय अराष्ट्रीय (रूस समर्थक चीन समर्थक) दो टुकड़ों में भी बंट गया है (उदाहरण है 'पूर्वग्रह')। प्रगतिशील साहित्य प्रयोजन प्रधान है और व्यक्तिवादियों के निर्बंध मार्ग में उसका अपना खोट रहता है। इन सारी स्थितियों के चलते नये गीत की सम्भावना कहाँ टिकती है प्रश्न यह है। निश्चित रूप से गीतकार युगद्रष्टा नहीं होता और न तो सम्पूर्ण समय को पढ़ेगा। वह सिर्फ युग की समग्र चेतना को अपने व्यक्ति निष्ठ धरातल पर कोमल संवेदनों की चाशनी में पागकर व्यंजित करने का प्रयास करेगा और कर रहा है। वह कविता की अन्य विधाओं की हत्या भी नहीं करेगा। फिर भी समकालीन कविता और उसके सन्दर्भ तथा परिवेश की भयावहता को पचाने के सिलसिले में गीत अपने छन्द और शास्त्रीय संगीत को एक सीमा तक ले सकता है। साथ ही यह भी अधिक सम्भव है कि दिनोदिन बदलते परिवेश के समानान्तर गीतों का स्वर अनास्थावादी ही रहे। गीतों के बिलकुल नये क्षितिज नयी कविता को आत्मसात् कर जाने की मनःस्थिति में हैं और इसलिए पहले के गीतों से बहुत भिन्न हैं।—फिर भी नये गीतकार को 'सहृदय' और 'तंत्रयुगीन' जैसी बड़ी त्रुटियों से सावधानी तो बरतनी ही पड़ेगी। नये गीतों को देखकर यह विश्वास तो किया ही जाना चाहिये कि गीत रोमैंटिक और व्यक्ति विशिष्ट होकर भी निस्संग (detached) हो सकता है। ●●

आधुनिक सृष्टि का प्रत्येक उपकरण आतंक अथवा वेदना की अवस्था में जब अभिव्यक्ति के लिए छटपटाने लगता है तब कविता के स्थान पर गीत का जन्म होता है। कविता और गीत की आकृति इस प्रकार स्वयंपूर्ण है—कुछ दुःखान्तिक भावों

के साथ एक गतिशील स्थिति का मन में सहज उदय हो जाता है—और यही गति प्रकारान्तर से लय में अभिव्यक्ति पाती है। स्वर की पुनरावृत्ति अथवा समावृत्ति से लय का इतना सम्बन्ध नहीं है जितना प्रस्तुत क्रिया की गति यति से है। इसलिए जब तक स्वर किसी गतियति के संतुलित अथवा क्रमिक प्रवाह में नहीं आ जाता तब तक उसमें लय की प्रस्थिति ही रहती है। जो लय को स्वर के साथ उलझाने का प्रयत्न करते हैं वे इस प्रसंग में गलती कर सकते हैं—क्योंकि लय का संगीत से जितना सम्बन्ध है उतना कविता से नहीं—कविता रसात्मक वाक्य है—अथवा रमणीय अर्थ प्रतिपादक वाक्य है—कविता में निहित भावार्थ मन में रस का संचार करता है जब कि लय गति यति विराम के ऊपरी परिवेश से शब्द योजना को यथासु मधुर बनाती है, काव्य में लय औपचारिक है जबकि संगीत में आवश्यक। यह भी सिद्धांत' अथवा 'पिच कण्ट्रोल' की अनावश्यक क्षमता प्रदान करने वाले गीतकारों की रचनाओं को उपयुक्त कारण से ही काव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती है—और काव्यबोध की नई पृष्ठभूमि में जहाँ कविता छन्द लय के आग्रह से मुक्त है—यह स्थिति और भी अनावश्यक हो गई है। और कविता के क्षेत्र में उस परम्परा पर गीत लिखने वालों को कुछ ऐसी दृष्टि से देखा जा रहा है जैसे नवीनता से इनका कोई सरोकार नहीं है। कुछेक जो आगे आए हैं उनकी अलग एक परम्परा बन गई है—और उन्हें नवछायावादी गीतकारों के ही—रूप में स्वीकार किया जा सका है—काव्य सृष्टि के नए विधान में उन्हें शामिल नहीं किया गया है।

इन सबके बावजूद भी काव्य को कला की श्रेणी से पृथक नहीं किया जा सकता और हमें लय सम्बन्धहीन कविता में भी संगति (Consistency) की खोज करनी पड़ती है—कलात्मक संगति के अन्वेषण की बात जब नयी कविता के संदर्भ में आती है तो सौन्दर्यबोध के कुछ अनावश्यक आग्रहों का हमें परित्याग करना होगा। कला-सृष्टि की मौलिक प्रक्रिया में कविता संगीत तथा चित्रकला की ही भाँति एक विशेष प्रकार की आंतरिक ऊहापोह से युक्त रहती है। लेकिन चूँकि अन्तर की सभी ऊहापोह कला की सृष्टि का कारण नहीं हो सकती (कदाचित यह इसलिए हो कि इनमें से अधिकांश अभिव्यक्ति के लिए प्रेरणा नहीं देती) इसलिए हमें यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि सर्जन के लिए बाध्य कर देने वाली विशिष्ट अवस्था ही कला के अस्तित्व की

परिचायक होती है।

अब मूलभूत संशय इस बात का रह जाता है कि रचना प्रक्रिया की इस मौलिक स्थिति में संगति का स्थान कहां है? प्राकृतिक व्यापारों की भांति आंतरिक सृष्टि का निर्धारण भी अत्यन्त सूक्ष्म है—दिनरात सूर्योदय सूर्यास्त बसन्त ग्रीष्म-पावस आदि की निरन्तर-आवृत्ति प्राकृतिक व्यापारों में एक स्वाभाविक संगति की स्थापना कर देती है इसी प्रकार आंतरिक जगत में प्रकाश-अंधकार के प्रभाव से उभरे आयाम सुख-दुःखादि के विविध प्रतीक-बिम्बों में प्रकट हुई अमूर्त भावाकृतियां और उनकी प्रतिक्रिया से अपना बोध सब मिलाकर निरन्तर एकान्वित 'डायनेमिज्म' का निर्माण कर देते हैं। और हमें बाह्यान्तर सृष्टि में एक कभी भंग न होने वाली संगति का बोध होता है।

नवगीतकार किसी एक स्थान पर अपनी रचना में यह संगति न दिखाकर समग्र रचना के माध्यम से यह प्रभाव उभारने के प्रयत्न में लगा है और बाह्यान्तर सृष्टि निहित लय को आत्मसात करता है। इस प्रकार नव गीत की सम्भावना एक विशिष्ट लयात्मक मनःस्थिति के सहारे होती है—भावविभोर मनःअवस्था की आंतरिक लय से विमुग्ध गीत गोविन्द की इन चिरंतन नवीन पंक्तियों में निश्चय ही बाह्य सृष्टि में निहित परब्रह्म की लय की बहुत ही स्पष्ट आवृत्ति हुई है।

ललित लवंग लता परिशीलन
कोमल मलय समीरे।

भाषा में आबद्ध न होने वाली एक लपेट हो सके इस हेतु उसमें क्रिया अथवा विशेषण शब्दों को सहजक्रम से आगे-पीछे करके अलंकृत करने तथा संयोजित करने की गुंजाइश होनी चाहिये—इस स्थिति की काव्य में तथा कला में विशेष रूप से इसलिए अपेक्षा होती है कि ये भाव तथा रूप गढ़ने की प्रक्रियाएं हैं। गीत एक भावमहल है जिसे शब्दों के संगमरमरी सांचों में ढाला जाता है। जीवन-प्रवाह में कविता के लिए कोई भी क्षण ग्राह्य हो सकता है—किसी भी क्षण को ठहरा कर मानो जैसे जीवन में छूट है किन्तु गीत उस प्रवाह के साथ तन्मय होकर बहते रहने की स्थिति का नाम है। भाषा के सीमित प्रतीकों की असमर्थता उसे अस्वीकार है—शब्द के आकलन व संयोजन से बात बनती हुई नहीं दीखती—अनुभूति के परिष्कृत संस्कारों से जिनकी अनुभूतियों की

उसद् महत्व से ही गीतमय युग प्रकट होगा ।

गीत की इस सम्भावना को ध्यान में रख कर छायावादियों ने हिन्दी को खड़ी बोली की रूक्षता से बाहर निकाला था और हिन्दी में मौलिक काव्य की गरिमा को प्रकटाया था। किन्तु अभी भी खड़ी काव्यत्व की सिद्धि के लिए उसमें बहुत कुछ सजीवापन लाना शेष था—नए कवियों तथा गीतकारों का परोक्षतः इसे काव्यभाषा बनाने का संघर्ष बहुत प्रबल रहा है। उन्होंने नए बिम्बविधान, नई प्रतीक योजनाओं तथा क्रियात्मक स्थितियों की बहुलता को प्रकट कर हिन्दी में काव्यत्व के बीज बोने का प्रयास किया है और यह प्रयास अभी भी जारी है ।

नवगीत के क्षेत्र में नीरज सर्वप्रथम नई सम्भावनाओं को लेकर प्रकट हुआ। महत्व की विद्रोहिणी बांसुरी के सुर फूंकता हुआ जीवन जगत का यह छायानर यह सदा रहस्य की रहस्यमय शृंगों पर और मनुष्यता की संकल्पध्वनि को तैराता रहा अपने कोमल स्वरों के जादू से। उसकी यायावर सुख-दुख की निपट वैयक्तिक अनुभूति तक ही सीमित न रही—उसमें जीवन के प्रति एक अटूट मुग्धताकारी सहानुभूति उभरी है। नीरज गांव की छुई,पनियारी अरसी सरिता अभिशप्त जीवन की मनोहारी मानवता को अपने मधु-स्वर की कोमल थपकियाँ देता हुआ—जिन्दगी की धार को पहाड़ से उतार 'लेने' की मधुरी विधा में निरत दिखाई देता है ।

इस प्रकार नव-छायावादी गीत का यह युग नीरज के साथ एक चुनौती लेकर प्रस्तुत हुआ था। (इसे यदि नवप्रभाववादी युग की संज्ञा दें तो कदाचित अधिक उपयुक्त होगा।) किन्तु अभी भी गीत को अपनी पौराणिक-रूढ़िगत-परम्परा से मुक्ति नहीं मिली थी स्पष्ट रूप से यह दृष्टिगोचर हो रहा था कि समसामयिक गीतकार की सार्थकता नई कविता की अनुभूति के समानान्तर ही गीत की आवृत्ति करने पर है। और यही कारण था कि गीत में नव प्रभाववादी युग का संघर्ष उसी समय से प्रारम्भ भी हो गया था जब से गीत को स्वर और लय के अधीन माना जाने लगा था इस पर इलाहाबादिक क्षेत्रों में हल्ला हुआ था। मंच के गायक कवि कविता की आत्मा पर कुठाराघात कर रहे हैं तथा उन्हें यह काव्य-परम्परा से परिचित व्यक्तियों ने यह बात जोर-शोर पर प्रकट की गई कि गीत सुरनिरपेक्ष माधुर्य से युक्त होना चाहिए—सुरनिरपेक्षता का यहाँ यही अर्थ है कि एक गीतकार द्वारा मोहक स्वर में गाए जाने के पश्चात भी सफल है

पढ़े जाने पर कोई गीत मन में वैसी ही मधुरता का संचार करे।

इस प्रकार प्रारम्भित हो जाने पर गीत से गेयता की आवश्यक मांग कम होती गई और उसकी गेयता पर सभी की दृष्टि केन्द्रित होने लगी। गीत के स्वरूप तथा आत्मपरक दोनों को लेकर इस बार प्रयास प्रारम्भ हो गया। गीत की परीक्षा का यु(ग) आ गया था—लोगों के कंठों में बार-बार बोले इससे बढ़कर गीत उनकी आत्माओं (में) नृत्य करने लगे ऐसी सम्भावनाओं के बीज उसमें डाले जाने लगे। एक साथ मधुरता और उपलब्धि की बहुत सुन्दर आवृत्ति नीरजोत्तर गीतकारों में सर्वप्रथम रामावतार त्यागी के गीतों में हुई। किन्तु रामावतार त्यागी परम्परा के गीताकाश में जैसे कोई ए(क) और खोज लिए गए तारे से अधिक मौलिक नहीं दिखाई देते। उनके काव्य में जहां गीत है वहां अर्चना है वन्दना है और समर्पण के फूलों की छाया में पलने वाला प्यार है—संक्षेप में रामावतार त्यागी चाहकर भी इतने मौलिक नहीं हो सके जितनी भूमि(का) बन चुकी थी उस मौलिकता के लिए। और वे इससे अधिक कुछ नहीं कह सके—

"गीत की डोर को ही पकड़ कर चढ़ो
फूल हो तो किसी देवता पर चढ़ो
पंछियों की तरह तुम कहीं बस उठो
मैं कहीं भावना की तरह गा उठूं।"

अपने आलम्बन को ऐसी काल्पनिक गरिमा दे देने के पश्चात् उसे वास्तविकता कचोटने लगती है और उनके गीतों में 'फ्रस्ट्रेशन' झलकने लगता है। कारवां में चलते चलते किसी छूटे हुए बनजारे के सदृश खोये खोये मन वाला हो जाता है यह गीतकार और हमें लगने लगता है जैसे काव्य में यह जो गरिमा उन्होंने दिखाई थी वह बनावटी थी।

शिवमंगल सिंह 'सुमन' के गीतों में जीवन में व्याप्त कुहासे के धुंधलके में किरण की आहट का निनाद नजर तो आ जाता है पर उसके लिए किसी के स्नेह की दो बूंदें प्राप्त होनी आवश्यक हैं—अन्यथा जीवन का यह अनादि अन्तहीन सफर भला कटेगा कैसे? इस प्रकार सुमनजी के गीत भी 'कन्फ्यूज्ड' हैं—अनुभूतियां उनके करीब से गुजरती हैं और वे उन्हें दर्द के साथ झुलाते हैं। यह भी एक स्थिति है। अभाव की स्थिति के आसपास जैसी कोई स्थिति। किन्तु अभाव को भावित करने के लिए जिस

काल्पनिक प्रतिस्थिति का आह्वान करना पड़ता है जिसके कारण न तो कथा को ही कुछ स्थायित्व मिल पाता है और न कलाकार को ही संतोष। ऐसे लोगों से वे लोग कहीं अच्छी स्थिति में हैं जिनके पास से हैं कर पीड़ा चली है—पर वह अभी पहर है और वे उसे सुन्दर बनाकर जीने के अभ्यासी हो गए हैं—पीड़ा की पराकाष्ठा में उसे जीने की शर्त ही पीड़ा ही हो गई है—

और कुछ ऐसी बासी काली रात और कुछ भोर सुहानी होकर निकली
बहुत पूजी धूप धूप पहुराई भरी सिरहा सांझ को
उजड़ उजड़ पथ सूनी गंगा सपनों के आकाश को
रही टहलती जिन्दगी की प्यासी बात कथा कुछ और कहानी होकर निकली

—हरीश भादानी

किन्तु जैसे सपनों के आकाश की गंगा का चित्र वैयक्तिक पीर के लिए बहुत दूर का हो गया था—गीतकार तो उस पीर को बहुत समीप से देखना चाहता था इसलिए चांदनी के लिए भी परवशता इस की गवाही हो गई थी कि वह अपनी खुशियों [illegible] एक साथ आकाश तथा धरती के सुख-दुख को जीने लगे। गीतकार ऐसी स्थिति में अपने गीतों में [illegible] सारल्य ढूँढने का प्रयास करता हुआ किसी प्रोषितपतिका के मुख से कहलाता है—

तुमसे मैं आंसूकी किरणों को जोर लिया
आंसू की वेला के छोर
माटी की चादर पर आशो का नाम
अपना लिख [illegible] परिहास
आकर भरे आंसूकी कागज के रंग लिया
दुहरी भर नयनों का छोर।

—चन्द्रमौलि उपाध्याय—'[illegible]'

यहाँ यहाँ पर देहरी तथा धरती पर बिखरा प्रणय का सुहाग निखर आया अपनी ही धरती के मोह ममता भरे इस प्यार में और सीधा सरल गीत की धुनों से महक उठा।

नन्ही सी चिड़िया तीखे स्वर टेरती
सूनी खिड़की राह पिया की हेरती
पूछ तो रहा रही है बिना कसूर के
मीत मीत में चुभते पाप मजूर के

—रवीन्द्र भ्रमर

छायावाद का आकाशी रूमान जबसे धरती के सोंधे सौंदर्य पर निछावर हो-हो कर रह गया—विरहाकुल स्वरों में धरती की कोख में ही जन्मा था जैसे यह गीत—

हिली नहीं
नीम की टहनी
भूल गई वे बातें सबकी सब
जो तुमको कहनी
धन्य धूप से छुटी-छुटी
चली हवाएं तीखी-तीखी
मार रही हैं जैसे ताने
कहती हैं जैसी अनकहनी

—परमानन्द श्रीवास्तव

नये गीतों में न केवल शब्द को जीवन का प्रसाद मिल रहा है अपितु उसे सहज तथा मौलिक रूप से गढ़ा भी जा रहा है। शब्द का यह मौलिक सौन्दर्य जितना गीतों में मुखरित हो रहा है उतना कविता में नहीं या शायद यों कहें तो अधिक अच्छा रहेगा कि काव्य चेतना में आविष्कृत कोई शब्द परिचय के स्तरित छोर से जितना गीत में प्रयुक्त होकर मुखरता है उतना कविता में होकर नहीं। इसका प्रमुख कारण है गीत में शब्दों की तुक युक्त समस्तावलि तथा लय का सरल प्रवाह। आज का नवगीत गीत की विकल शब्दावली को छोड़कर मैदान में उतरी स्वरलता की पावन धारा के समान प्रवाहित है। छन्द के बन्धन का दुराग्रह आज उस पर नहीं है—भावों के सरल प्रवाह में एक बार भाषा का जो कलेवर निर्मित हो गया वही उसका छन्द हो गया और उसी के अनुरूप गीत की सृष्टि होती चली गई। इसके अतिरिक्त भी नवगीतकार अनुभूति की दार्शनिक गरिमा के बखाने को लक्ष्य नहीं मानता। 'एक बूँद सहसा उछली' नामक

अज्ञेय की कविता इस बात की द्योतक है कि कोई भी गीतकार सफल होने का दावा करे उससे पूर्व उसे व्यष्टि-समष्टि के प्रभाव अभियोगों से अपनी अनुभूति का सघन स्पष्ट होना आवश्यक है। अपनी अनुभूतियों के साथ वह मनमाना खेल नहीं रचा सकता। जितनी वफादारी से प्रत्येक कोई गीतकार अपने को प्रकट कर सके उतना ही वह सफल होगा। अज्ञेय की अप्रकाशित रचना इस संदर्भ में द्रष्टव्य है। भविष्य के गीत को कुछ ऐसी ही मौलिक अनुभावना सरसता तथा तन्मयता की अपेक्षा है। यथा—

चुक रहा हूँ मैं,
स्वयं जब चुक चुकूँ
तब भी बच रहे की बात
(बात ही तो रहेगी!)
सभी को कहूँ
यह सफलता, यह नियति कवि की
कहूँ!
इतना भर कहूँ
इतना कह सकूँ
जब तक चुकूँ
(बच रही जो बात)

—अज्ञेय



गीत की प्राचीन परिभाषायें देकर मैं यहाँ विषय को खींचना नहीं चाहता। लेकिन जब तक गीत के प्रारंभिक रूप से लेकर अधुनातन उपलब्धियों पर एक सरसरी नजर न डाल ली जाय तब तक नये गीत की आवश्यकता तथा अनिवार्यता पर पूरा प्रकाश पड़ना कठिन हो जायेगा। गीत की परम्परा जीवन जितनी ही पुरानी है। वेदों के ऋषियों से लेकर बच्चन तक, तथा नरेन्द्र शर्मा से लेकर ओम प्रभाकर तक गीत अपने विभिन्न रूपों में भारतीय अथवा हिन्दी कविता के लिए एक उपलब्धि का विषय रहा है। काव्य की इस अपूर्व विधा में पुरानी से पुरानी संवेदनायें, कैशोर्य भावुकता से लेकर अधुनातन
7 संवेदना, बौद्धिकता, वैचारिकता और व्यंग्य आदि सभी काव्यगुण पूरी तीव्रता से उभरकर आए हैं।

कविता विरोधियों की एक फौज ने इधर गीत को विसीपिटी विधा के रूप में स्वीकार किया है जिसका प्रतिवाद विद्वज्जनों ने मौन रहकर किया है। उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि इस प्रकार के कारनामे किसी भी स्वस्थ परम्परा को आगे ही बढ़ाते हैं। लेकिन यह भी सच है कि गीत के विरुद्ध इस प्रकार का विरोधी प्रचार एक हद तक सही भी है। जिसके परिणामस्वरूप नये काव्य समीक्षकों ने कुछ कमजोर गीतकारों के इक्के-दुक्के गीतों को लेकर ही अपनी आलोचना का निर्वाह किया है। संभवतः उन्होंने ऐसे ही गीत पढ़े हैं अथवा नाम लिये बिना किसी कवि सम्मेलन में जाकर अपनी आलोचना की प्रेरणा ली है। उनकी मान्यता है कि आधुनिक गीत में यथार्थ के प्रति प्रतिबद्धता नहीं है, नई संवेदनायें गीति शैली में अभिव्यक्त हो सकने में असमर्थ हैं। ऐसे आलोचक अगर गिरिजा कुमार माथुर, शंभूनाथसिंह, धर्मवीर भारती, रामस्वरूप चतुर्वेदी सुरेन्द्र तिवारी तथा नरेश सक्सेना के नये गीति प्रयोगों पर नजर डालते तो उन्हें कविता और जीवन के प्रति इतना निराश न होना पड़ता।

दूसरे, आधुनिक युगबोध को देखते हुए नये गीतकारों के लिए आवश्यक था कि वे सदियों पुरानी चली आ रही परिपाटी से अलग हटकर गीति रचना में संलग्न होते। वर्तमान ह्रासोन्मुखी सभ्यता में मृतप्राय जीवन मूल्यों का विघटन और छटपटाहट का व्यक्त न होना किसी भी साहित्य में गतिरोध का लक्षण ही माना जा सकता था। जबकि संसार के अधिकांश भाग में एक ही प्रकार की संवेदनायें उभर रही हैं अकेलेपन की अनुभूति तीव्रतर होती जाती है बढ़ता हुआ धुआँ छाये रही है युद्ध की विभीषिका मानव को डसने को तत्पर है प्रेम सम्बन्धों में अन्तर आता जा रहा है, हिन्दी के नये गीतकारों का इस जीवन की अनुभूतियों को अपने कृतित्व में समाना स्वाभाविक था। यही कारण है कि आज के गीत में छायावादी गीतों की-सी आकाश-कुसुम के गुलदस्ते तैयार करने की प्रवृत्ति प्रगतिवादी गीतों की-सी नारेबाजी प्रयोगवादी रचनाओं की-सी दुरूह और अस्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं है। बल्कि आज के नये गीतकार जिस जीवन को भोग रहे हैं उसी की कवित्वमय अभिव्यक्ति अपनी कृतियों में कर रहे हैं।

कुछ लोगों के दिमाग में यह बात घर कर गई है कि गीतकार का स्थान केवल कवि सम्मेलनों के मंच हैं या गीतकार या कविकर्म केवल मंचों पर खड़े होकर गीत-गायन करना है वे भ्रम की स्थिति में जी रहे हैं। हिन्दी के किसी भी प्रबुद्ध गीतकार कवि ने कभी भी मंच को प्राथमिकता नहीं दी है। बच्चन दिनकर, नरेन्द्र शर्मा,

रोमी, त्यागी, वीरेन्द्र मिश्र आदि बहुत से श्रेष्ठ कवियों के नाम इस प्रसंग में लिये जा सकते हैं। गीत को बदनाम करने वाले कवियों की एक बड़ी भारी संख्या है जिसका साहित्य से कोई सरोकार नहीं है और कवि सम्मेलनों के मंच पर जिसकी तूती बोलती है। नया गीत इस कमजोरी से अपना दामन बचाता हुआ चल रहा है। किन्तु इसका तात्पर्य यह न समझा जाय कि नया गीत जनोन्मुख नहीं है बल्कि वह सही अर्थों में जनोन्मुख है क्योंकि वह जन को गुमराह नहीं करता।

नये गीत ने संवेदना के नये कोणों की प्रतिष्ठा की है। अपने विकासकाल में वह और भी तीव्रता से संवेदना के नये आयामों की स्थापना करेगा। नये गीत से भावुकता परिसीमित समाप्त हो चुकी है, उसकी जगह लेती है एक व्यापक संवेदना ने। अब गीत में भीख पुकार की स्थिति नहीं रही। यांत्रिक सभ्यता विकलांग संस्कृति और विकृत युगबोध ने जीवन के संगीत को भी पंगु बना दिया है। इसी कारण नये गीत में प्राण के स्वर पाय भी धीमे दिखाई देंगे और उसमें एक नयी तल्खता होगी। नया गीत गाये जाने के लिये नहीं महसूस किये जाने के लिए है।

नई व्यंग्य अपने आप में काव्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। व्यंग्य समसामयिक विकृतियों दुर्बलताओं, विसंगतियों का पर्दाफाश करता है लेकिन नितांत मौलिक रूप से नये गीत में व्यंग्य का स्वरूप इस शैली से उभरा है कि वर्तमान जीवन की छटपटाहट साफ जाहिर होती है। ऐसे युग में जहाँ राहें नहीं सिर्फ चौराहा बचे हों, नैतिकता नीलाम हो रही हो और प्रवृत्तियों पर धूल चढ़ रही हो, ईमानदारी की लाशों के ढेर पर रुपये का प्रताप हो केवल संवेदना मिश्रित व्यंग्य से ही अपने आपको व्यक्त किया जा सकता है। विषमता की यह स्थिति आँख में आँसू नहीं लाती तटस्थ होकर विचार करने को विवश करती है। खुशी की बात है कि गीतकारों ने व्यंग्य के महत्व को समझा है।

नये गीत की संभावनाओं और उपलब्धियों की चर्चा करते हुए कुछ महत्वपूर्ण गीतों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। मैं यहाँ दो नये प्रेम गीतों का हवाला दूँगा जो एक ही मनःस्थिति में लिखे गये हैं और जिनके रचयिता हिन्दी के दो प्रमुख गीतकार हैं। प्रेम की बदलती हुई मान्यता और स्वरूप इनमें पूरी तरह मुखरित हुआ है। बिछुड़ती हुई प्रिया को कवि किस प्रकार तटस्थ होकर विदाई देता है और जीवन की

पहला गीत इस प्रकार है—

बरसों के बाद कभी
हम तुम यदि मिलें कहीं
देखें कुछ परिचित से
लेकिन पहचानें ना।
याद भी न आये नाम
रूप, रंग, काम, धाम
सोचें
यह संभव है
पर मन में मानें ना।
हो न याद एक बार
आया तूफान ज्वार
बन्द मिटे पृष्ठों को
पढ़ने की ठानें ना।
बातें जो साथ हुईं
बातों के साथ गईं
आँखें जो मिली रहीं
उनको भी जानें ना

—धूप के धान । गिरिजाकुमार माथु

माथुर के इस गीत में तटस्थता की पूरी कोशिश के बावजूद भावुकता का हल्का सा पुट आ गया है। अब दूसरा गीत देखिये—

अब क्या हो तुमसे अगर छिपा
तो तुमसे कहना है मुझे प्रिय
कहा कभी तुमसे भी
किसी अन्य मीता से केवल यह कहना बस
मेरे हैं शब्द भाव, शेष सब तुम्हारे हैं।
रूठ गई मुझसे यदि अकस्मात
तो तुमसे कहती है एक बात
साथ कभी रहे जहाँ हम दोनों
साथ अन्य साथी के सिर्फ वहाँ रहना मत
मेरे हैं छोर, शेष देश सब तुम्हारे हैं।
चित्रित लगें मेरे यदि तुम्हें नयन
तो तुमसे लेना है एक वचन
देखा जिस तरह कभी मैंने था
किसी अन्य व्यक्ति की दृष्टि वहाँ सहना मत
शेष दृश्यमानों के समेत सब तुम्हारे हैं।

—जली हुई दिशा से : माहेश्वर तारी

प्रभावुकता और तटस्थता की चरम सीमा इस गीत में मिलती है। कवि वर्तमान जीवन की अन्न को प्रेयसी तक के सन्दर्भ में स्वीकार कर लेता है। अब वे जमाने लद गये जब लोग बिजली पर नाम लिखाने की कसमें निभाया करते थे और किसी एक के हो जाया करते थे। छायावादी इस युग में कवि केवल प्रेयसी से यह चाहता है कि कम से कम किसी अन्य को वे ही बातें न कहे, उन्हीं स्थानों पर न रहे और वैसी ही दृष्टि न डाले। उसे मात्र इस बात की शंका है। इसमें कवि ने प्रेम की उस विसंगति पर भी व्यंग्य किया है जिसमें तमाम शब्द सम्बोधन पुराने पड़ गये हैं अथवा व्यर्थ हो गये हैं तथा जिसमें यौवन को एक ही नजर से देखा जाता है।

मैं इन दोनों गीतों को मात्र नये गीत इसलिए स्वीकार नहीं करूँगा कि जिस युग में हरेक आदर्श झूठा लगता है आदर्शों की दुहाई देना सर्वथा उपहासास्पद है। पर इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि ये दोनों गीत अति सफल प्रेमगीत हैं और आधुनिक युगबोध का जीवंत चित्रण हमें इनमें मिलता है।

इस तोड़ती सी मोहक रेखों से कटते हुए जीवन और बीमार सभ्यता के इस युग में भी नये गीत में जीवन के प्रति आस्था ही व्यक्त हुई है। पलायनवाद अपने में कोई अपवाद नहीं है बल्कि छायावादी पलायनवाद का ही दूसरा रूप है। लेकिन वह जिन्दगी का तराना बनकर रह जाना भी नहीं चाहता है। सही अर्थों में जीवन की व्याख्या करेगा और कर रहा है।

इस प्रकार के कतिपय प्रमुख गीतकारों के नाम गिनाना असंगत नहीं है और सही मानों में गिरिजाकुमार माथुर, शंभूनाथसिंह, धर्मवीर भारती, बालस्वरूप राही, ओम प्रभाकर, रामदरश मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, नरेश सक्सेना आदि गीतकारों ने इस क्षेत्र में बड़ा काम किया है।

जीवन में दिन प्रतिदिन बढ़ते जाते तनाव तथा कचोटने वाली स्थिति में गीत का दायित्व और भी बढ़ गया है। एक ओर तो उसे अति बौद्धिकता से लोहा लेना है जो मानव का उपहास उड़ा रही है और दूसरी ओर उसे सस्ती भावुकता की दलदली से बाहर निकलना है जो किसी भी मंजिल पर नहीं पहुँचती।

गद्य-काव्य उपलब्धियाँ और सम्भावनाएँ

शान्तिकुमार पारख

गद्य काव्य आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है जिसका विकास बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से हुआ है। यद्यपि गद्य काव्य के अनेकों उदाहरण हमें वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं लेकिन बाह्य रूप की दृष्टि से हिन्दी के गद्य काव्यों एवं प्राचीन गद्य काव्यों में बहुत अन्तर है। संस्कृत में गद्य काव्य शब्द का प्रयोग अधिकतर कथा, वृत्त या आख्यायिका के अर्थ में हुआ है, परन्तु आधुनिक विद्वान् प्राचीन संस्कृताचार्यों की भाँति गद्यकाव्य को कथा, वृत्त या आख्यायिका के रूप में स्वीकार नहीं करते। अपने विशिष्ट अर्थ में गद्यकाव्य वह रचना है जिसमें कविता जैसी संवेदनशीलता एवं रसात्मकता होती है।[1] अतः गद्यकाव्य शब्द हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट प्रकार की रचना के लिए प्रयुक्त होता है, जो कि प्राचीन संस्कृत गद्यकाव्यों से बहुत भिन्न है। भाव तत्त्व की प्रधानता हिन्दी के गद्यकाव्यों की प्रमुख विशेषता है, वह संस्कृत में उपलब्ध नहीं होती। सत्य यह है कि हिन्दी साहित्य में गद्यकाव्य का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इसका आरम्भ गीतांजलि से माना है लेकिन यदि गहराई से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इससे पूर्व भी यत्र-तत्र गद्यकाव्य के उदाहरण दृष्टिगोचर हो जाते हैं। डॉ. त्रिगुणायत के विचारानुसार हिन्दी गद्य काव्य का विकास रीतिकालीन प्रवृत्तियों की भूमिका पर स्वतंत्र रूप से हुआ है।[2] अपने इस कथन के प्रमाण स्वरूप उन्होंने चतुरसेन शास्त्री तथा ब्रजनन्दन सहाय के कथनों को उद्धृत किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'गीतांजलि' हिन्दी गद्यकाव्य की प्रेरक शक्ति अवश्य रही है पर उसे ही आरम्भ नहीं माना जा सकता।

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश—पृष्ठ २५५।

२. डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत : शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, भाग २—पृष्ठ २११

प्रारम्भिक काल (१९१४-३०) के गद्य काव्यों में अधिकांशतः दार्शनिकता रहस्यमयता भक्ति प्रवणता आदि प्रवृत्तियां ही दृष्टिगोचर होती हैं। रायकृष्णदास जी की 'साधना' (१९१७) इस काल की सर्व प्रथम कृति है, जिसके छोटे छोटे गीतों में गद्यकाव्य का सुन्दर सुनिश्चित एवं विकसित रूप देखने को मिलता है। 'गीतांजलि' से प्रभावित इस कृति में रहस्योन्मुख प्रेम की बड़ी सुन्दर व्यंजना हुई है, राय साहब पर रवीन्द्र, खलील जिब्रान एवं मारिसमेटरलिंक का प्रभाव पड़ा है। उन्होंने अपने अधिकांश गद्यकाव्यों में प्रत्येक घटना को आध्यात्मिक रूप देने का प्रयास किया है। उनके गद्यकाव्यों में बौद्धिक तथा भावात्मक दोनों रूप मिलते हैं। हिन्दी गद्य काव्य में भक्ति-भावना का प्रतिनिधित्व करने वाले एक मात्र लेखक वियोगी हरि हैं। उनके प्रारंभिक गद्य काव्यों में जहाँ भक्ति-भावना प्रधान रही है वहाँ राष्ट्रीय भावना को भी स्थान दिया है। परन्तु अन्तिम दो कृतियाँ 'ठंडे छींटे' तथा 'श्रद्धाकण' में क्रमशः निम्नवर्ग के प्रति सहानुभूति एवं गांधी जी के जीवन दर्शन को भी स्पष्ट किया गया है। आचार्य चतुरसेन में वैयक्तिकता रहस्यमय भावना तथा वस्तुवादी दृष्टिकोण की प्रधानता रही है। इस काल के गद्य काव्यों में भावानुभूतियों का प्रायः अभाव सा ही रहा है। फलस्वरूप जीवन के मार्मिक पक्षों का उद्घाटन नहीं हो सका है। कहीं अतिशय बौद्धिकता है तो कहीं भावुकता। कहने का तात्पर्य यह है कि गद्य काव्य अपने सभी प्राणवान् तत्वों के साथ निखर नहीं सका है।

प्रारंभिक कालीन अभावों की बहुत अंशों तक पूर्ति करने का श्रेय मध्य काल (१९३०-४०) के कलाकारों को प्राप्त हो सका है। डॉ० रघुवीरसिंह श्रीमती दिनेशनन्दिनी डालमिया, अज्ञेय, तेजनारायण काक, माखनलाल चतुर्वेदी तथा बेनीपुरी आदि कलाकारों ने अपनी प्रतिभा से गद्य काव्य को रूप और रंग दिया है। डॉ० रघुवीरसिंह की 'शेष स्मृतियाँ', भाव एवं भाषा की दृष्टि से हिन्दी साहित्य की एक अनुपम कृति कही जा सकती है। श्रीमती डालमिया की कृतियों में आध्यात्मिक भावना तथा पार्थिव प्रेम की व्यंजना हुई है एवं यत्र-तत्र देश-दुर्दशा पर भी लेखिका की मनोव्यथा स्पष्ट हुई है। वस्तुतः श्रीमती डालमिया के गद्य काव्य जनजीवन से दूर वैयक्तिक भावनाओं से युक्त हैं। अज्ञेयजी ने अन्य लेखों की भांति गद्य गीतों के संसार में भी प्रयोगात्मकता लाने का प्रयास अवश्य किया था पर वह आगे नहीं बढ़ सका। अज्ञेयजी के गद्य-काव्यों में भावना की अपेक्षा विचारों की प्रधानता है। तेजनारायण काक की 'मदिरा' में भावात्मकता, निर्भर

और पाषाण' में विचारात्मकता तथा वैकुण्ठ विद्यार्थी की 'तूणीर' में आध्यात्मिक चिन्तन है। राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत कृति माखनलाल चतुर्वेदी की 'साहित्य देवता' तथा बलदेव की 'आँसू भरी धरती' है। श्री बेनीपुरी जी के 'गेहूँ और गुलाब' में आधुनिक व्यस्त जीवन की जटिलता से उत्पन्न स्थिति का यथार्थ चित्रण मिलता है। अतः स्पष्ट है कि इस काल के कलाकारों में जहाँ एक ओर आध्यात्मिक चिन्तन प्रधान है वहाँ दूसरी ओर लौकिक प्रेम की भी सुन्दर व्यंजना हुई है। भाव, भाषा आकार-प्रकार, विषय, शिल्प आदि की दृष्टि से यह काल व्यापक क्षेत्र समेट कर चला है। कहीं राष्ट्रीय भावनाएं विद्यमान हैं तो कहीं रंगीन कल्पनाएं, तो कहीं भावों की मर्मस्पर्शिता। वस्तुतः इसमें छायावादी प्रगतिवादी प्रयोगवादी रहस्यवादी, आदर्शवादी, यथार्थवादी आध्यात्मवादी एवं उपदेशात्मक प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं लेकिन रसात्मकता तथा सूक्ष्म संवेदनाओं का प्रायः अभाव हो रहा है।

वर्तमानकालीन (१९५० से) गद्य-काव्य किसी विशेष दिशा को ग्रहण नहीं कर सके हैं। राजेन्द्रसिंह स्नेहलता वर्मा हरिमोहनलाल महावीर शरण, शकुन्तला रेणु रंगनाथ दिवाकर तथा अम्बिका प्रसाद श्रीवास्तव श्रीमती लीला भटनागर, नन्दकिशोर आदि इस काल के प्रमुख गद्य-काव्यकार हैं, जिनकी कृतियों में जहाँ एक ओर नवीन कल्पना विलास तथा भाव गाम्भीर्य के दर्शन होते हैं वहाँ दूसरी ओर मधुर आकांक्षा तथा पलायन वृत्ति के भी। यहाँ यह भी स्पष्ट करदें कि यह पलायनवृत्ति अनास्था सूचक न होकर आस्था की ओर गतिशील है। विगत ५० वर्षों के इतिहास में कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ इस क्षेत्र में अवश्य हुई हैं जिन पर हिन्दी साहित्य को गर्व है। लेकिन इस दशक में गद्य काव्य के क्षेत्र में गत्यावरोध की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है।

इस गत्यावरोध का प्रमुख कारण गद्य-काव्य में आधुनिक नवीन संवेदनाओं का अभाव ही कहा जा सकता है। गद्य-काव्य युग की माँग को पूरा करने में असमर्थ रहा है। अधिकांश गद्य-काव्यों में आत्मा-परमात्मा ब्रह्म, मोक्ष, स्वर्ग, मृत्यु प्रेम रहस्य आदि विषयों को ही प्रमुख रूप से चित्रित किया गया है, जो कि तत्कालीन स्थिति एवं वातावरण को दृष्टिगत रखते हुए ही उपयुक्त कहा जा सकता है। सन् ४० के पश्चात् की जिस भावात्मक एकता की आवश्यकता थी उसे पूर्ण करने में गद्य-काव्य असमर्थ रहे हैं।

विगत दो दशाब्दियों में जीवन के सभी मानदण्ड बदल चुके हैं। मानवीय मूल्यों में अत्यन्त तीव्र वेग से परिवर्तन हो रहे हैं। जीवन का कोई क्षेत्र नवीनतम विचार धाराओं से अछूता नहीं रह सका है। रहे भी कैसे? प्रगति मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। प्रगति चाहे किसी भी दिशा में हो इस बात की ओर संकेत करती है कि हम युग की रफ्तार के साथ आगे बढ़ रहे हैं। मैं समझता हूँ कि आज के इस संघर्षमय जीवन में गद्य काव्य की कल्पनाशीलता एवं कोमलता ही काफी नहीं है।

मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि काव्य में कल्पना तत्व की आवश्यकता ही नहीं होती। वस्तुतः काव्य की भूमि ही मानव कल्पना की भूमि है। विज्ञान में जो बुद्धि है, दर्शन में जो दृष्टि है, वही कविता में कल्पना है। पाश्चात्य काव्य जगत में तो कल्पना का विशेष महत्व है। शेक्सपीयर, काण्ट, स्टीवर्ट आदि ने इसे काव्य प्रतिभा माना है

An uncommon degree of imagination constitutes poetical genius
—*D Stewart* लेकिन कला का वास्तविक जीवन को निकट लाने में है। और जो कला इस महत्त कार्य में असफल रहती है उसकी सत्ता भी संदिग्ध है। आधुनिक मस्तिष्क आध्यात्मिकता, लौकिकता, रहस्यमयता तथा उपदेशात्मकता की अपेक्षा बौद्धिकता के अधिक निकट है तथा नई कविता में इसी तत्व की प्रधानता है। एक दृष्टिकोण से बौद्धिकता की माँग सही है ताकि कलाकार एक सुलझा हुआ स्पष्ट दृष्टिकोण हमारे सामने रखे, केवल भावुकता ही नहीं।

गद्यकाव्य और पद्य-काव्य में सबसे प्रमुख अन्तर छन्द बंधन का है। नई कविता जो कि इस प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं करती, साहित्य के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण काव्य प्रवृत्ति के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी है। वास्तव में आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रतिनिधि 'नई कविता' है, जिसमें गद्यमयता अपेक्षाकृत अधिक है। ऐसी स्थिति में गद्य काव्य की संभावना का अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है। आधुनिक नवीन सबल धाराओं के प्रभाव में गद्यकाव्य जनता की अभिरुचि को बनाये रख सकेगा या नहीं यह एक विचारणीय प्रश्न है।

गद्यकाव्य की सबसे प्रमुख विशेषता उसकी कोमलता है, जो निश्चित रूप से हृदय के अधिक से अधिक निकट ले आती है। लेकिन कभी कभी यही कोमलता इतनी दुर्बलता बन जाती है, जबकि यह जीवन से दूर चला जाता है। वस्तुतः सत्य यह है कि नई कविता की अतिशय बौद्धिकता तथा गद्यकाव्य की अतिशय भावुकता दोनों का समन्वय आवश्यक है। रोगी के रोग का निदान उसके सामने रखने मात्र से ही नहीं हो सकता उसके लिये तो औषधि की जितनी आवश्यकता है उतनी ही सहानुभूति की भी है। अतः जब तक नई कविता में भावुकता तथा गद्यकाव्य में बौद्धिकता का समावेश नहीं हो जाता, तब तक दोनों की सफलता संदिग्ध है। दोनों तत्वों के सफल समन्वय में भविष्य निश्चित है।

गद्यकाव्यकारों से यह आशा की जा सकती है कि वे संकरी राह को त्याग कर इसकी गति में एक नया मोड़ लायें। जिस यथार्थ जीवन चित्रण का गद्यकाव्यों में अभाव है, उसकी पूर्ति करें। यथार्थ जीवन के साथ संलग्न होकर ही साहित्य की यह महत्वपूर्ण विधा अपना स्थायित्व कायम रख सकती है।

गीत का स्वरूप

डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरु

स्थूल रूपात्मक योजना के कौशल से लेकर आत्मा के भावरस्तु भंग व सा
आनन्दानुभूति तक के विराट विस्तार को अपने में समेट रखने वाला गीत साहित्य
एक विशिष्ट स्थान व महत्व रखता आया है । साहित्य की अनेक विधाएं अथवा प्र
हैं जो अपने स्थान पर अपने महत्व में अडिग हैं किन्तु सब विधाओं को प्राय
दृष्टि से सामूहिक रूप में देखने पर गीत का स्थान व महत्व उन सबमें निर्विवाद रू
सर्वस्व दिखाई पड़ने लगता है । रचना-पद्धति के भेद से प्रत्येक साहित्य विधा की प
एक मर्यादित प्रभाव सीमा है पर गीत पर विचार करते ही इस प्रभाव की
अपने उत्कर्ष में बिन्दु तक पहुँची दिखाई पड़ने लगती है जहां मानव मन के भाव
विचार अपने स्वरूप व प्रक्रिया-भेद को भुलाकर अस्तित्व की पूर्णता को पहिचाने
हुए एक दूसरे में आकाश और नीलिमा की तरह या धूप और छाया की तरह अ
नाविच्छिन्न हो जाते हैं । यों प्रत्येक साहित्य-विधा में भाव व विचार का वि
अनुपातों में, सामञ्जस्य बैठा कर रचना के सापेक्षिक पटल पुष्टता व आन्तरिक प
क्रम के आधार पर महत्व प्रतिष्ठित किया जाता है पर [illegible] सामञ्जस्य कदाचित
को छोड़कर अन्यत्र इतने सुघड़ व सुथरे रूप में घटित होता नहीं दिखाई पड़ता ।
जो पूर्ण व सच्ची तृप्ति निश्चित ही न तो केवल बौद्धिक जिज्ञासाओं के उपशमन से
संभव है और न केवल मन को तरलती हृदय-भावकी के परितोष से [illegible] । यह दू
बात है कि हम एक की तृप्ति में अनिवार्यतः दूसरे की तृप्ति मान कर कुछ देर के लि
निःशेष आन्तरिक तृप्ति का अभिनय करलें । वस्तुतः हमारा मनोविधान ऐसा है कि जिस
मूलक बुद्धि व संवेदक मूलक हृदय समवेत रूप से तृप्त होना चाहते हैं । ललित साहि
में इस तृप्ति की प्रशस्त संभावनाएं रहती हैं और गीत में सर्वाधिक । विचारात्मक नि

कर भावात्मक निबन्ध, गद्य गीत या पद्य काव्य रसात्मक आख्यायिका आदि विधाओं में ; व भावना का विनियोग, विभिन्न अनुपातों में रहता है पर गीत में कदाचित् यह योग, आत्मिक तृप्ति की दृष्टि से, सबसे अधिक पूर्ण रूप में रहता है। एक सफल ; सूक्ष्मतम चिन्तन व आत्म-तृप्ति की एक ही साथ अपेक्षा रखता है। जो गीत इस ता की जितनी ही सहज सुन्दर रूप में पूर्ति करने का आश्वासन देता है वह साहित्य एक अनमोल मणि बन कर शताब्दियों तक सहृदयों की चेतना-तरंगों में लहराता रहता । रसात्मक मानव चेतना ऐसे गीत के रूप में मानों अपने विकास की एक मंजिल को व गई रहती है। ये उत्तम गीतों के सृजन से चेतना धारा एक स्वस्थ स्पर्द्धा की प्रक्रिया भावना के चरम आदर्श की ओर निरन्तर प्रवहमान रहती है। इस प्रकार एक श्रेष्ठ ; मानव चेतना की विकासात्मक धारा का एक मान बन जाता है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि कौशलपूर्ण व सूक्ष्म रचना-शिल्प व गंभीर व पूर्णतर आत्माभिव्यंजन (पाठक या श्रोता के पक्ष में आत्म-तृप्ति) ये दोनों गीत के [illegible] हैं। हमने ऊपर गीत में बौद्धिक व भावात्मक तुष्टि के एक ही साथ प्राप्त होने की बात कही है इसका थोड़ा विशदीकरण आवश्यक है। गीत के द्वारा भावात्मक तुष्टि की बात तो स्पष्ट ही है। बौद्धिक तुष्टि के विधान पर कवि पक्ष से व श्रोता-पाठक पक्ष से—दोनों पक्षों से विचार किया जाना चाहिए। रसात्मकता और भावुकता । यह अर्थ नहीं है कि कवि अथवा पाठक-श्रोता बुद्धि विवेक हीन होकर साहित्य-साधना लीन रहते हैं। ऐसा सोचना एक भयंकर भ्रान्ति होगी और साहित्य के महान् स्वरूप रूप और प्रकृति के प्रति अनभिज्ञता। साहित्य में बुद्धि का उपयोग होता है किन्तु रस । भावना के शासन में। सृष्टा कवि की बुद्धि काव्य प्रक्रिया में दो स्तरों या धरातलों पर काम करती है—कलापक्ष के और विचार या दर्शन पक्ष के विधान में। भाषा-छन्द व अलंकार के विधान में कवि-बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म रूप में सतत सक्रिय रहती है। अन्यथा रचना के स्थापत्य व रूप कभी भी सुडौल व वस्तु के ठीक अनुरूप न बनें। इधर विचार व दार्शनिक भावनाओं के प्रकाशन में भी कवि की बुद्धि का ही प्रदर्शन है। रूप में दोनों स्तरों पर बुद्धि अन्तःसलिला की तरह प्रच्छन्न रह कर बड़ा महीन संयोजन व्यवस्थापन करती रहती है। इस प्रकार समस्त सृजन-व्यापार में कवि की बुद्धि का भी प्रदर्शन या विनियोग होता है। हम यों नहीं कह सकते कि उसका सृजन भी कोरी

भावुकता है। जिस गीत का बौद्धिक स्नायु जाल जितना ही व्यवस्थित होगा उतना ही वह गीत टिकाऊ, पुष्ट व प्रभविष्णु होगा। कोरी पिलपिली भावुकता कभी भी गीत के रूप में व्यवस्थित भी होकर (धोखा देने का प्रयत्न करने पर भी) बौद्धिक कलात्मक प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकती। गीत में बुद्धि तत्त्व के प्रयोग के सम्बन्ध में यह बात अच्छी तरह ध्यान में रखने की है।

प्रवर अच्छे गीत के पाठक भी सस्ती भावुकता के उपासक नहीं होते। वे गीत की कला व उसके दर्शन की भूमि पर कवि हृदय से भेंटते हैं व इस तत्त्व के सन्निवेश से विशेष तुष्ट या सन्तुष्ट होते हैं। स्वयं श्रोता-पाठक को भी अर्थ-बोध, लक्षणा-व्यंजना व कल्पना के धरातल पर अपनी निजी बुद्धि की पूंजी का परिचय देना पड़ता है। इस प्रकार समग्रतः बुद्धि व्यापार चलता है पर कला कि प्रक्रिया से और रस के शासन में। कहने की आवश्यकता नहीं कि बुद्धि तत्त्व को स्वीकृति से ही गीत सुडौल पुष्ट व कांतिमान बनता है। बुद्धि तत्त्व के समुचित समावेश से ही वह समस्त अन्तःकरण के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में बाहर अवतरित होता है।

गीत रस के संदर्भ में विशेष रूप से विचारणीय है। रस के स्वरूप के संबंध में कहा गया है कि वह घनीभूत या सान्द्र व अखण्ड होता है, आत्मा की प्रकृति के सत्वोद्रेक से उत्पन्न होता है, चिन्मय व वेद्यान्तरस्पर्शशून्य होता है, ब्रह्मानन्दसहोदर रूप है, इसकी अनुभूति से आत्मा का अज्ञानावरण हट जाता है, सहृदय के द्वारा उसका पुनः पुनः अनुसंधान किया जाता है आदि। ऐसे रस का अनुभव साहित्य की सभी विधाओं में से केवल गीत की विधा में ही सर्वाधिक सम्भव है। रस की यह अनुभूति चित्त की सभी वृत्तियों के द्वारा प्राप्य कही गई है अतः अभिनवगुप्त जैसे रसतत्त्वज्ञ चित्तवृत्तियों के आकार, भेद व संख्या को महत्त्व नहीं देते। उनकी दृष्टि में सभी प्रकार की चित्तवृत्तियाँ आत्मा में विगलित हो कर रस रूप में परिणत होती हैं। केवल 'शृंगार' या केवल 'करुण' या केवल वीर में ही रस का अनुभव करना हमारी पूरी सहृदयता का परिचायक नहीं। गीत साधना प्रिय व अप्रिय, दुःख व सुख, अनुकूल व प्रतिकूल सब में सामरस्य स्थापित करके जीवन के अखण्ड व व्यापक रस की अनुभूति में विश्वास करती है। इस दृष्टि का गीत के रस विचार से सीधा सम्बन्ध है। केवल शृंगार रस या केवल करुण रस या केवल वीर रस ही क्यों? सभी प्रकार की [चित्तवृत्तियों

(स्थायी, संचारी भाव) रस-कोटि को पहुँचने की पूरी क्षमता से सम्पन्न हैं । इसके लिए काव्य रस के अनुभवकर्ता के संस्कारों की प्रबलता और मानसिक भूमिका की तत्परता नितान्त अपेक्षित है । इसके आधार पर गीत का व्यापकतम स्वरूप तभी खड़ा हो सकता है जब हम 'नहीं देखो बलम बारम्बार', 'मन मस्त हुआ फिर क्यों बोले' 'ऐरी मैं तो दरद दिवानी [illegible]' 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' 'सब जीवन बीता जाता है, धूप छाँह के खेल सदृश !' 'चमक धूप की समाप्त लहरियाँ [illegible] मृगजी [illegible]', 'बीसावासिनी [illegible] !'—आदि सभी गीतों में समान भाव से पूर्णतम रस प्रवृत्त करने के लिए तैयार हों । रसानुभूति काल में चित्त की तीन स्थितियाँ होती हैं—द्रुति दीप्ति और विस्तार । यद्यपि ये तीनों स्थितियाँ साहित्य रस के रूप में परिभाषित रसों के साथ पृथकशः संयुक्त करके देखी जा सकती हैं पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूर्ण सहृदय वही है जिसमें तीनों के अनुभव की सहज क्षमता हो । काव्य में जब आत्मा की पूर्णता का पूरा आश्वासन है तो तीनों का समवेत अभ्यास ही आवश्यक है । इस दृष्टि से देखने पर सभी रसों के गीतों में आत्मा का पूर्ण प्रकाशन सम्भव है । अतः गीत को किसी रस विशेष से ही संयुक्त करके देखना बहुत उचित होगा । लोकगीत—साहित्यिक गीत, प्रांजल भाषा-ग्राम्य भाषा, शांत रस—शृंगार रस जैसे व्यावहारिक भेद जहाँ मिट कर रचना गीत मात्र रह जाये—वही गीत की प्रकृत भूमि है ।

इसी प्रकार गीत का 'वर्ण्य' या 'वस्तु' भी महत्त्वपूर्ण है । यह ठीक है कि गीत में भारी भरकम बौद्धिक या दार्शनिक विचार-सामग्री न हो क्योंकि गीत जैसी कोमल रचना के लिए यह सब कुछ ढोते चलना कठिन है । पर यह समझना भी कदाचित् अपूर्ण चिन्तन होगा कि गीत में हमारे सूक्ष्म मन के व्यायाम के लिए भी कुछ न हो । वस्तुतः ललित साहित्य कल्पनात्मक पुनर्निर्माण है जिसमें रचयिता के पक्ष में तो विधायक कल्पना और रस भोक्ता के पक्ष में ग्राहक कल्पना की नितान्त आवश्यकता होती है । रस-ग्राहक यदि सक्रिय रूप से रस-ग्रहण न करे तो उसे वह या वैसा आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता जैसा दिन भर गाढ़ा श्रम करने वाले को चाँदनी रात में । तात्पर्य यह कि गीत की वस्तु अवश्य इतनी पौष्टिक हो कि पाठक की कल्पना पूरा पसीना बहा कर जीवन का स्वाद ले । निष्क्रिय पड़े रह कर, अलस कल्पना से, बासी सी या भुस जैसी निस्सत्व वस्तु से (जैसे ठंडाई छान चुकने पर पीछे बचा हुआ सुगधा) कौन से सच्चे व गंभीर रस की प्राप्ति होगी ? गीत के श्रवण या वाचन के साथ ही हमारी चेतना को पुष्ट व स्फूर्तिवान

बनाने वाली कुछ सूक्ष्म सामग्री गीत में अवश्य ही वांछित है । गीत रस के आस्वाद-काल में सहृदय पाठक रचना-गत रमणीय वस्तु को या तत्संबंधित सुन्दर कल्पना बिंबों या सूक्ति की चर्वणा करता रहता है । यदि संस्कारी पाठक के लिए चर्वणा के योग्य उपयुक्त सामग्री प्रदान न की गई तो गीत तत्कालीन छिन्न मेघ खण्ड सा रेंगता हुआ सा विलय पावेगा; उसका कोई विशेष प्रभाव पीछे नहीं छूटेगा । अस्तु ! वस्तु ही पाठक में वांछित कल्पना के स्वरूप गुण व स्तर को निर्धारित करती है अतः इस दृष्टि से वस्तु व कल्पना परस्पर ग्रथित रूप से सम्बद्ध हैं ।

मोती के बनने के लिए सीप ही चाहिए और गीत के पोहने के लिए लय ही । निस्सन्देह ही स्वच्छन्द छन्द के सम्बन्ध में बहुत से तर्क वजनदार व सहज स्वीकार्य हैं पर गीत के सन्दर्भ में तो वे एक दो पग भी नहीं चलते । गीत यदि गीत है तो सहृदयों की जिह्वा की स्निग्ध सीढ़ियों से हृदयों तक चलना चाहेगा । ऊबड़ खाबड़ कंकड़ पत्थर, कँटीला पथ वहां ज्यादा कारगर न होगा । कोरा लय का आश्वासन भी बात नहीं बनायेगा । वाल्ट ह्विटमैन या कमिंग्स की कारीगरी से कबीर मीरा या सूर तुलसी के गीत हम तक न आ पाते यह बात गीत लिये ठीक है । आखिर छंदों की नियमितता कोई इतनी अवांछित वस्तु नहीं । भाव के आरोह अवरोह के अनुरूप कटाव-छटाव वाली पंक्तियां लय के बल पर बाह्यार्थ निरूपिणी कविता या सामान्य उच्छ्वासमय गीतों में भले ही चल सकती हैं, पर जिस भाव या उच्छ्वास की छाया मन और काल पर व्यापक और लम्बी होनी है उसमें सम्भवतः अधिक टिकाऊ, विश्वसनीय व स्थायी चाहिए । लय ही नहीं छन्द के चरणों की माप व नियमित काट छाँट श्रेष्ठ व उदात्त भाव के दीर्घ जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है । आप इस व्यवस्था को अस्वाभाविक कह कर खत्म नहीं कर सकते । मनुष्य के मन को एक प्रकार की नियमितता भी आश्वासन का सुख देती है । काव्य में भी जीवन के इस शाश्वत नियम को मान लेने में छन्द की रक्षा दिखाई पड़ती है ।

गीत के मूल स्वरूप के उद्घाटक भाव अपनी ही अनुरंजना को मानदण्ड बना कर गीत का कथित विश्वासमूलक आदर्श तैयार करते हैं । गीत जैसी स्वच्छन्द व आत्माभिव्यंजन प्रधान रचना इस प्रकार के आदर्श-निर्माण को स्वभावतः ही बढ़ावा देती है । यों किसी विधा के स्वरूप को लेकर विभिन्न विचार-सरणियां चलती रहें तो कोई हानि भी नहीं—वे स्वतः अपनी स्वस्थ स्पर्धा की चरम परिणति में कोई सर्वमान्य या बहुमान्य स्वरूप उभार कर रहेंगी । पर व्यवस्था व प्रणालिका का प्रेम हमें अधिक धैर्यवान् बनने की छूट नहीं देता और प्रौढ़ जिज्ञासु भी भी नाम वाद का आह्वान करता रहता है ।

कलात्मक सुषमा रस की व्यापकता, आत्मिक पूर्णता व तृप्ति—इन मुख्य आधारों पर गीत के आदर्श रूप का उद्घाटन विस्तृत मनन का एक रोचक विषय है ।

●●

गीत नए गीत के सन्दर्भ में

•

कन्हैयालाल सेठिया

मैं अपनी लघुता पुजता से,
अनजान अपरिचित पथहारा,
मंजिल के पीछे अपने ही—
बन बंधुता—मेरी बन जाता।

कल्पना के सौन्दर्य लोक में विचरण करने वाला, अपनी जिज्ञासु चिन्तना से बाह्य, अन्तर और सृष्टि के व्यक्त-अव्यक्त रूपों को दार्शनिक दृष्टि से देखकर उसे सत्ता की बहुरंगी भाव तरंगों की तूलिका से सुन्दर बनाकर अभिव्यक्ति देने वाला, कल्पना के सपनों को चुन कर उन्हें रेशम-सी चिकनी और चाँदनी सी तरल-भाषा का परिधान पहिनाने वाला गीतकार कुछ ऐसा लिख सकता है, कुछ ऐसा-सा कह सकता है कि आलोचना करती कलम मुझसे प्रश्न कर उठती है— "क्या लिखोगे इस पर ?"

मेरी आलोचक-मना बुद्धि उत्तर देती है "आलोचना और क्या ?"

"क्यों ?"

"क्योंकि 'प्रतिबिम्ब' के गायक कवि ने कुछ महत्वपूर्ण दिया है। वह मौलिक है अपनी तरह से।" आलोचना करती कलम हिचकिचाती है क्षण भर को ठहरती है। आलोचक बुद्धि दुबारा प्रश्न करती है 'क्या हुआ ? रुकी क्यों ? यह हिचक क्यों ?

"हिन्दी-जगत के लिए नाम अपरिचित-सा है हिन्दी वाले बड़ों की छोटी बात तो सुनने के आदी हैं, पर छोटों की बड़ी बात भी उनके कानों से नहीं टकराती।"

आलोचना करती कलम मुस्कराकर उत्तर देती है।

धर्म निरपेक्ष राज्य-सी चपलतर आलोचक-अन्तःबुद्धि शिकायत करती है यह तो बुरा है। देखो! कवि का दावा है 'बिम्ब की आलोचना 'प्रतिबिम्ब'-की करेगा—हृदय की सुषमा को पलकों में भर कर इसमें निहारिये तो निःसन्देह आपकी स्वस्थ सुन्दरता का साक्षी हो सकेगा।'

आलोचना करती कलम स्पष्ट प्रश्न करती है 'हृदय की सुषमा को पलकों में भरकर अनुभूत किया है ?

"हाँ... क्योंकि कवि स्वयं लिखता है 'औरों का मूल्यांकन अपने मानस से है भूल।'

"तब ?" आलोचना करती कलम कवि की अन्वेषण जिज्ञासु बुद्धि की तरह जिज्ञासु हो पूछती है।

आलोचक-अन्तःबुद्धि तटस्थ भाव उत्तर देती है, 'तब क्या यह सच है 'प्रतिबिम्ब' के गीतों की अनुभूति—अनुभवता दार्शनिक वर्णस्थ-पावन प्रस्तुत है। मंजिल मीठे सपनों के बन्धनों का बंदी, अपनी अन्तर्मुखी भावना धारा से कल्पना में जीवन प्राप्त कर, अन्तर में अभिव्यक्त सौन्दर्य को आत्मसात् कर, अन्ततः भाव विस्फोटन से प में सौम्यता तथा माधुर्य ले आता है। मुखरित भावर्षण की ऐसी भावीन वर्षा होती है। सम्पन्नता और आतंक दोनों घुल मिल जाते हैं आशा सुनहरी, अभिव्यक्त हो खिलती है

सत्य धरा के आंचल में है,
देह–देह के बन्धन
किन्तु कल्पना बिना अधूरा
लगता जीवन दर्शन।

कारण ? क्योंकि अनन्त की परिभाषा अन्त के शब्दों में व्यक्त है, असीम प्रेरक ससीम है। क्योंकि केवल कंठ ही तृषित नहीं है बल्कि नीर भी प्यासा है। क्योंकि विरह के सहारे ही अभिलाषा जीवित है।

"किन बिम्बों को यह प्यास छूती है ? किनको यह विरह संचित अभिलाषा भावना सिक्त करती है ?" आलोचना करती कलम मेरे भावुक अतिशयोक्ति की सीमा छूते कथन को 'नोट' करती हुई बोली।

आलोचक मना-बुद्धि हत-प्रभा हो गई।

आलोचक मन बोला कवि के भावुक अन्तर की संवेदित तरंगें, अनन्त लोक से प्राय-शृंगार का अतिशय प्रेम गीतों की बहुरंगी, बहुविधमयी घटाएं बिखरती, और मधुर फुहार से मन को भिगो देती हैं। अन्तः इन्द्रधनुषी प्रभावों से भर जाता है।'

आलोचक बुद्धि बोली, "दर्शन को आत्म-सात् कर निखरी बुद्धि से तर्क-पूर्ण सम्मत सूक्तियों की काव्य-कतरनें अद्भुत रूप से प्रेषित करता है कवि। धरा और आकाश की पीर की देता है। यह तार्किक इस तरह से भी हो जाता है: सत्य—वह झूठ है जो अन्त तक छिप जाय नित्य—वह नाश है जो स्वयं से एक जाय विस्मय—वह घटना है जो अनिवार्य घटी हो; व्यक्ति—वासना का व्यापकमय व्यवसाय, मृत्यु—वह जन्म जो अपने सत्य को पा गया हो।

आलोचना करती कलम खीझ उठी, कुढ़कर कर व्यंग्य करती हुई बोली "प्रतिबिम्ब का स्तुति-पुराण लिख रहे हो क्या? कन्हैयालाल सेठिया मात्र तुम्हें कवि लगे? कहीं कुछ दिए ... ...?" कलम ने वाक्य पूरा नहीं किया।

आलोचक बुद्धि बोली "तुम्हें दोनों से मतलब है या? यही कि आलोचना के अपनी माने हैं, कवि को बाणों की मार दे-देकर उसकी जान निकाल देना जैसे उसने काव्य लिखकर कोई अक्षम्य अपराध कर दिया हो। चलो यह भी सही। दोष है, भावों की पुनरावृत्ति का। दूसरी आपत्ति तब होती है जब सेठिया भी अपनी सहजता को छोड़ लैला-मजनू की चमत्कारी उपमाएं और क्लिष्ट भाषा में वह भी खींचा-तानी करने लगते हैं— चुनावों के बगीचे में कमाने के सपने देखने लगते हैं। गीतों को 'कबूतर' बना आसमान के गुम्बद से ऊपर उड़ाकर 'गुटरगूं-गुटरगूं' करवाते हैं। बात सिर्फ इतनी है कि रचनाओं को सृजन-काल के संदर्भ में रख कर तात्कालिक हिन्दी गीतों की तुलना में मिलाकर परखा जाये तो निश्चित ही ये श्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में रखी जा सकती हैं। कवि का दोष है कि वह प्रचार के तरीके नहीं जानता और दूसरी बात कि राजस्थान में है जहां के आलोचक-भट्ट अपने के घरों को देखने के बजाय दूसरों की आंखों में रखी किताबों में चोटित खोखलताओं को अपनी चापलूसी-कड़ाई में कुचलने और उसको निनादित करने में अपनी बहादुरी समझते हैं, या फिर 'ग्रंथों' को संकलित करने या 'कल्याण' में लेख लिखने में विद्वत्ता समझते हैं- क्षम्य हैं वे ... ...।

● राजानन्द भटनागर

केदारनाथसिंह

शोध निर्देशक अध्यापकों द्वारा लिखित 'स्वकथ्य' से कहीं अधिक कथ्य एवं शोध सार्थक्य स्पष्टता है नये गीतों और पुराने गीतों में । नये गीतों का सृजन और शिल्प-सम्बन्ध अतीत अर्जित गीत मान्यताओं की प्रतिक्रियास्वरूप उतना नहीं है, जितना बदलते हुए परिवेश युग-बोध एवं परिवर्तित कथ्य संवेदन के कारण है । नयी कविता ने बढ़ते हुए बौद्धिक वैज्ञानिक शिल्प परिवेशों का अनुभावन किया एवं व्यक्ति के टूटे और उसके अनुभूत को उसके सम्पूर्ण तनाव और अन्तर्विरोधों के साथ कविता स्तर पर कहा है । नये गीतों में उक्त उपलब्धि की संप्राप्ति ही अधिक अभिव्यक्त हुई है । इस कारण युग-बोध को आत्मसात कर उसके समानान्तर चलने में नये गीत अभी नयी कविता की तुलना में एक चरण पीछे हैं । नयी कविता जैसी बौद्धिकता का स्तर और कौशल नये गीतों की प्राप्य उपलब्धि नहीं है । उनमें तरलता है जो उन्हें अपनी कथ्य एवं शिल्पगत स्तर उपलब्धियों द्वारा पुराने गीतों से दूर कराए जाने पर भी एक स्तर पर उनसे जोड़े रखती है ।

नये गीतों का प्रश्न नयी कविता के साथ तो नहीं उठा है किन्तु उससे बहुत बाद में भी नहीं उठा है । नयी कहानी और नयी आलोचना के प्रश्न के साथ ही नये गीतों का प्रश्न उठाया गया है । युग बोध ग्रहण करने में नयी कविता जैसी परिपक्वता नये गीतों में दिखाई नहीं देती ।

कवि आचार्य समीक्षक गीतों पर टिप्पणी करते समय उनका सम्बन्ध आर्ष ग्रन्थों से निश्चय ही जोड़ेंगे (महत्त्व सार्थक यहीं से होता है ?) सुनाद जयदेव, चण्डीदास विद्यापति एवं हिन्दी तथा हिन्दी से इतर गीत परम्परा का हवाला देते हुए (लगभग समस्त हिन्दी शोध युक्त ग्रन्थों में यह दृष्टि उपलब्ध है) वे अपनी शोध-दृष्टि से स्वतः सूत्र प्राप्त करते ही हैं परिचयात्मक सामग्री से विश्व-विद्यालयी विद्यार्थियों की तरह ही जिज्ञासा का तोष-पुण्य भी लूटते हैं । इस संदर्भ में प्रस्तुत निबन्ध अपूर्ण ही है ।

विशुद्ध नये गीतकारों का एकान्त अभाव है, जो रचनाकार नयी कविता लिख रहे हैं वे ही नये गीतों का भी सृजन कर रहे हैं (यद्यपि नये कवि के लिए यह कर्म अति आवश्यक नहीं है) किन्तु नये गीतों में तुक और लय की अनिवार्यता (जो अधिक-

वाद प्रगतिवाद प्रयोगवादी मांसलता से निश्चय ही नितान्त भिन्न और महीनी है) के मुक्तबोध के सुलझे आयामों को सहज होकर नहीं सह पाया है। यही कारण है कि लोक गीतों की उपमयी 'कांपते की छोरियां' पुराने वेबे की 'तरकारी बेचने वाली बीकानेरी मालिन' से आगे नहीं बढ़ पाई है। नये गीतों के संदर्भ में धर्मवीर भारती की चर्चा वैसी ही लगेगी। जैसी कि किसी पुण्य मुहूर्त में 'गुनाहों के देवता' की र्ति 'फ़ीरोज़ी होठों पर बर्बाद ज़िन्दगी' बहू भावरी के पिछड़े अनुभूत की — समयमयता उसमें सूखी लकड़ी नहीं है। ऐसे या इस जैसे गीतों का अनुभूत या तो छायावादी न-अभिव्यक्ति का स्मरण कराता है या फिर उसमें भाव सम्पत्ती का वैविध्य स्पष्ट होता है। 'माथुरत के पृष्ठ पर रखी हुई 'बाँसुरी' हिन्दी की मध्यकालीन आधुनिक युग-बोध के संदर्भ में सोची) बोधात्मकता का ही प्रतिनिधित्व रती है।

अब तक विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में नये गीतों के नाम पर पुराने गीतों की ही प-बोध चलती रही है। 'वासन्ती' का नये गीत-स्वर' वीरेन्द्र मिश्र का निबन्ध इ 'भाव-बोध' का अच्छा नमूना है। कुछ कवियों ने पुराने कथ्य एवं गीतबोध को : शिल्प में गढ़ने का असफल प्रयत्न किया है। नये गीत परम्परा से हटकर नये युग ध के प्रहरी हैं। यद्यपि मात्रात्मक रूप में वे बहुत नहीं हैं—बहरहाल।

नये कवि केदारनाथ सिंह के गीतों की सघनता और कोमलता उसे दूसरे गीत वियों से पृथक करती है। उसके गीतों में सघन कमानियत अनुभूत है इस कारण ौद्धिकता की अपेक्षा भाव-बोध की लकीरें ही अधिक गहरी हो उठी हैं। वर्णनात्मकता ी मांसलता कवि को अभीष्ट नहीं है होनी भी नहीं चाहिए, उसकी व्यंजनात्मकता एवं स्पष्ट ही कवि के गीतों का वैशिष्ट्य है। इसीलिए कवि पंक्तियों के भार पर विशेष ध्यान नहीं देता। हिन्दी काव्य शास्त्री कवि की इस लापरवाही को कदाचित् असम्य समझें। कवि द्वारा शब्दों या वाक्यों की पुनरावृत्ति करने पर यह सुविसृष्ट व्यंजनात्मक लय-स्वरा पाठक के बोध में हहराते बरसाती नाले के समान उमड़ घुमड़ करके एक 'ध्वनि वैक्यूम' का निर्माण कर देती है किन्तु यह प्रक्रिया जितनी भाव-स्तर पर घटित होती है, उतनी बुद्धि-स्तर पर नहीं (जब कि नये गीतों के लिए इस प्रक्रिया का बौद्धिक स्तर पर घटित होना परिपक्वता का सामीप्य प्राप्त कर लेता है) कवि की इस प्रकार की उपलब्धि 'वसन्त गीत' जैसी रचनाओं में अधिक सुनाव के साथ

अभिव्यक्ति पा सकी है—

"मेरे दुख का आखिर तुमसे रिश्ता क्या है
यह आज समझ पाया मैं—
इस जाने में सब कुछ, जाओ
आह जीवन भी मेरे भीतर के सब जाने
जाओ, जाओ जाओ।"[1]

केदारनाथ सिंह के गीत का नया बोध उनके नये कवि के—समानान्तर चलता है, अनेक स्थलों पर स्पष्ट संकेत इस तथ्य के भी मिलते हैं कि उनका गीतकार उनके कवि को आश्रय दे रहा है जिससे कवि की कविताओं को सरसता और प्रवाह मिलता है, परिणाम होता है कि कवि की कविताएं गद्य स्तर तक नहीं पहुँच पातीं—कविताएं ही बनी रहती हैं। नव बोध लोक धर्मों से किसी-स्तर पर सम्पृक्त होने के कारण कवि के गीतों में ताज़गी और नयापन भरता रहता है, यह उपलब्धि कवि को अनायास ही उनकी कविताओं के लिए भी प्राप्त हो जाती है।

कुछ स्थलों में कवि अपने गीत-बोध को अतीत गीत रस से पूर्णतः कट नहीं पाया है 'धुन्धरिका का सुबिनों की चादर मनबीनी' प्रयोग अतीत गीत चेतना के ही अधिक अनुकूल है, किन्तु इस जैसे प्रयोग कवि की गीत रचनाओं में मात्रात्मक रूप में अति न्यून हैं, अतः नगण्य हैं।

प्रेषण की सहजता और स्वाभाविकता ने कवि की गीत रचनाओं की सघनता को सौंपी ही है उनमें कोमलता और आत्मीयता का विकास भी परवश ढीलेपन के साथ कर दिया है। कहीं-कहीं यह अवलम्ब बिना लाग लपेट की सीधी अभिव्यक्ति गीतों के अभिव्यक्ति आयाम में बहुत कुछ नया जोड़ जाती है जिससे कवि के—परिचित सत्य उसके और भी सधे हो उठते हैं, 'फागुन का गीत' इसी परिप्रेक्ष्य की उपलब्धि को पाठक के सम्मुख स्पष्टि देता है—

"अनगाए भी ये इतने मीठे
इन्हें गाएं तो क्या गाएं
ये आते अहरते चले जाते
इन्हें पाएं तो क्या पाएं
ये टेसू में आग लगा जाते इन्हें छूने में डर लगता।"[2]

इस शैली की अभिव्यक्ति की सहजता कवि को अधिकांश गीत रचनाओं में उपलब्ध है। विषय उपादानों और उनके प्रतीकों के चयन में भी कवि इतना ही सहज है। अपने चतुर्दिक विस्तीर्ण परिवेश के साथ उसके आत्मीय सम्बन्ध हैं, फिर चाहे इस परिवेशगत पृष्ठभूमि में घर से बेदखल 'बौनी चीजें हों, चीरों की भाषा हो, चाहे पंडुक का सिहरना हो या फिर 'हिरनी सपट धूप का पत्थिए पर पिघलना' या इस जैसी और सतरें।

पूर्ण तहस-नहस केदार के गीतों की उपलब्धि नहीं ही है यद्यपि यह भी सही है कि व्यतीत गीत रस (प्रयोगवादी गीत बोध भी इसी में सम्मिलित मानना चाहिये) से भी ये परे हैं। केदार के गीतों में व्यतीत गीत और नए गीतों की संक्रान्ति पहिचानी जा सकती है। छायावादी गीत कवि गीत लय को गुनगुनाता था नया गीत कवि दैनिक वस्तु और परिवेश स्थितियों को बिम्ब प्रतीक एवं संचरणशील लोक छन्द चित्रों द्वारा कथ्य बोध स्तर पर दोहराता चलता है। यह तथ्य नये गीत और व्यतीत गीतों की रचना प्रक्रिया का मूल अंतर स्पष्ट करता है। लय नये गीतों में अप्रयुक्त है, साथ ही नए गीतों की लय उनकी अपनी लय है जो बहुत कुछ गीतकार के अनुकूल शिल्प तथा बिम्बात्मक प्रक्रिया से अनुशासित रहती है। नए गीत का कथ्य बोध अपनी सुविधानुसार प्रवाह, गति विराम तथा उतार चढ़ाव प्रस्तुत करता है। छायावादी गीत कवि स्वयं गीतों में एक पक्ष था मतलब यह है कि जब वह हंसता रोता था (सिसकता भी था) तभी उसके गीत पाठक को हंसाते रुलाते थे (सिसकना भी इसमें शामिल है)। मैं इन सब बातों की चर्चा यहां पर इसलिए कर रहा हूं क्योंकि साथ नए गीतों के विकास-क्रम में यह रचना प्रक्रिया-गत तथा लय और शिल्प का पार्थक्य अधिक स्पष्ट रहेगा। केदार के गीत इस स्तर से किंचित् उठे हुए हैं कवि अपने व्यक्ति से मुक्त होकर भाव और बुद्धि स्तर पर अनुभूति जीता है यह गीत में छायावादियों की तरह एक पक्ष नहीं है यदि 'पक्ष' है भी तो उसकी वैयक्तिकता, वह अपने व्यक्तित्व का उपयोग प्रेषणीयता में ही करता है।

केदार के गीतों में भावुकता तो है ही बौद्धिक तटस्थ की स्थिति भी कहीं-कहीं पर है जिसका अर्थ है कि कवि पूर्णतः अभी स्वयं को सृजन क्षणों में तटस्थ नहीं रख पाया। फिर भी केदार के गीतों में पिछले गीतों जैसा भीतापन नहीं है और न ही रोने धोने का छायावादी स्वर। गीतों की आगत रचना में युग-बोध के संदर्भ से

अभिव्यक्ति पा सकी है—

" मेरे दुख का आखिर तुमसे रिश्ता क्या है
यह बात समझ सुँधा मैं—
इस नाते में सब कुछ, पाओ
आह सीख लो मेरे भीतर के सब नाते
नाचो नाचो नाचो।"

केदारनाथ सिंह के गीत का नव बोध उनके नये कवि के—समानान्तर चलता है, अनेक स्थलों पर स्पष्ट संकेत इस तथ्य के भी मिलते हैं कि उनका गीतकार उनके कवि को माध्यम दे रहा है जिससे कवि की कविताओं को तरलता और प्रवाह मिलता है, परिणाम होता है कि कवि की कविताएं गद्य स्तर तक नहीं पहुंच पातीं—कविताएं ही बनी रहती हैं। नव बोध लोक धर्मों से किसी–स्तर पर सम्पृक्त होने के कारण कवि के गीतों में ताजगी और नयापन भरता रहता है यह उपलब्धि कवि को अनायास ही उनकी कविताओं के लिए भी प्राप्त हो जाती है।

कुछ स्थलों में कवि अपने गीत-बोध का नवगीत गीत रूप से पूर्णतः त्याग नहीं पाया है 'बुलबुलिया का दुनियाँ की चादर मनबीनी' प्रयोग नवगीत गीत चेतना के ही अधिक अनुरूप है, किन्तु इस जैसे प्रयोग कवि की गीत रचनाओं में मात्रात्मक रूप में अति न्यून हैं अतः नगण्य हैं।

प्रेषण की सहजता और स्वाभाविकता ने कवि की गीत रचनाओं की सफलता तो सौंपी ही है उनमें कोमलता और आत्मीयता का विकास भी यथावत् तीव्रता के साथ कर दिया है। कहीं-कहीं यह प्रयत्न बिना लाग लपेट की सीधी अभिव्यक्ति गीतों के अभिव्यक्ति आयाम में बहुत कुछ नया जोड़ जाती है जिससे कवि के—परिचित स्वर उसके और भी सगे हो उठते हैं, 'फागुन का गीत' इसी परिप्रेक्ष्य की उपलब्धि को पाठक के सम्मुख स्पष्टि देता है—

" अमवाह भी ये इतने मीठे
इन्हें गाएं तो क्या गाए
ये आते इठलाते चले जाते
इन्हें पाएं तो क्या पाएं
ये टेसू में आग लगा जाते इन्हें छूने में डर लगता।"

इस शैली ही अभिव्यक्ति की सहजता कवि की अधिकांश गीत रचनाओं में उपलब्ध । विषय रचनाओं और उनके बिम्बों के चयन में भी कवि इतना ही सहज है । उसे प्राकृतिक विस्तीर्ण परिवेश के साथ उसके आत्मीय सम्बन्ध हैं, फिर चाहे इस विशेषण उपलब्धि में घर में बैठकर 'ठंडी चीजें हों औरों की माया हो, चाहे पंडुक र सिहरना हो या फिर 'हिलती सपट धूप' का 'तकिए पर पिघलना' या इस शैली और सबके ।

पूर्ण वस्तु-राम केदार के गीतों को उपलब्धि नहीं ही है यद्यपि यह भी सही है कि अतीत गीत रस (प्रयोगवादी गीत बोध भी इसी में सम्मिलित मानना चाहिये) से ही से परे हैं । केदार के गीतों में अतीत गीत और नए गीतों की संक्रान्ति पहिचानी जा सकती है । छायावादी गीत कवि गीत लय को गुनगुनाता था नया गीत कवि इतिवृत्त और परिवेश स्थितियों को बिम्ब प्रतीक एवं संभावनाशील लोक द्वारा जिन्हें हम बोध स्तर पर दोहराता रहता है । यह तथ्य नये गीत और अतीत गीतों की रचना प्रक्रिया का मूल अंतर स्पष्ट करता है । लय नये गीतों में अप्रमुख है, साथ ही नए गीतों की लय उनकी अपनी लय है, जो बहुत कुछ गीतकार के अनुभूत, शिल्प तथा बिम्बात्मक प्रक्रिया से अनुशासित रहती है । नए गीत का कथ्य बोध अपनी सुविधानुसार प्रवाह, ठोस, विराम तथा उतार चढ़ाव ग्रहण करता है । छायावादी गीत कवि स्वयं गीतों में एक पात्र था, मतलब यह है कि जब वह हँसता रोता था (सिसकना भी था) तभी उसके गीत पाठक को हँसाते रुलाते थे (सिसकना भी इसमें शामिल है) । मैं इन सब बातों की चर्चा यहां पर इसलिए कर रहा हूं क्योंकि आगत नए गीतों के विकास-क्रम में यह रचना प्रक्रिया-गत तथा लय और शिल्प गत पार्थक्य अधिक स्पष्ट रहेगा । केदार के गीत इस स्तर से किंचित् उठे हुए हैं कवि अपने व्यक्ति से मुक्त होकर भाव और बुद्धि स्तर पर अनुभूति जीता है, वह गीत में छायावादियों की तरह एक पात्र नहीं है यदि 'पात्र' है भी तो उसकी संप्रेषणीयता, वह अपने व्यक्तित्व का उपयोग प्रेषणीयता में ही करता है ।

केदार के गीतों में भावुकता तो है ही बौद्धिक तटस्थ्य की स्थिति भी कहीं-कहीं पर है जिसका अर्थ है कि कवि पूर्णतः अभी स्वयं को भावुक क्षणों में तटस्थ नहीं रख पाता । फिर भी केदार के गीतों में पिछले गीतों जैसा गीलापन नहीं है और न ही रोने धोने का छायावादी स्वर । गीतों की आगत रूप में युग-बोध के संदर्भ में

तटस्थ राग तथा बौद्धिक अनुभूति का भी विकासोन्मुख रूप में उपयोग किया जायगा, उसका कथ्य-बोध युग बोध के समानान्तर होगा। केदार के गीत इस दिशा में बढ़ते हुए गीत मार्गियों को प्रथम पड़ाव तक पहुँचा सकेंगे।

युवक कवि (रामदेर ने केदार को युवकों का प्रिय माना है, फ्राइड के अनुसार इस वक्तव्य का क्या अर्थ हुआ?) केदार का युग बोध लोक तत्त्व से प्रेरित है; यथा गीतों के कथ्य-चयन से लेकर भाषा प्रियत्व एवं अप्रस्तुतों तक के चयन में तथा प्रभाव ग्रहण करने में कवि लोक दृष्टि से बेतरह—बंधा हुआ है, यही कारण है कि उसके अनुभूत उपादान पपीहा-लिप' बादल यों 'पातों का गीत' बसन्त गीत' 'रात' 'आज नए मावए' 'फागुन का गीत' 'दुपहरिया' तथा इन्हीं जैसे और लोक जीवन की-अभिमात्य बंध रहे हैं। कथ्य चयन में कवि की युवक कोमल-दृष्टि निरन्तर उसके साथ रही है। सौंदर्य की उमानियत के प्रति कवि की दृष्टि-विशेष है। कोमलता व अंतरंग क्षणों में भी कवि कतिपय स्थानों पर बौद्धिक हो उठता है, स्थलों पर कवि में तटस्थ दृष्टि का कुटक-स्पष्ट देखा जा सकता है। व्यक्तित्व का विकराल तथा युग विडम्बनाओं के मध्य से गुजरता हुआ कवि का बोध तटस्थ राग तथा बौद्धिक अनुभूति को पाठक के सम्मुख उपस्थित करता है। ऐसे समय कवि के गीत बोध को किसी कदर युग बोध के समानान्तर पहुँचाने में सफल होते हैं। 'विदा गीत' में कवि प्रिय 'अंचल में समीरण बांधने के लिए युवकोचित सरलता और उद्धारलेपण का आश्रय लेता है, किन्तु 'फूल सा मरण बांधने के लिए उसकी उत्सुकता तथा "फेन सा इस तीर पर हमको लहर बिखरा गई है।" जैसी बौद्धिक युगसंगीत अनुभूति से भी वह अछूता नहीं है। कवि के गीतों में टटकी मौलिकता है।

केदार के गीत-विषय सरसरी तौर पर देखने से नये प्रतीत नहीं होते; किन्तु कवि द्वारा उनके प्रति बरता गया न्याय नयेपन को उभारने करने में सर्वथा समर्थ है। 'रात' में 'महक ठमका किया' 'खिड़की का पल्ला खड़का किया' तथा 'बसंत गीत' में—

> यह कैसा पातास
> कि मन को मगन मगन कर दिया"

के साथ 'हाथों में सिरजन की मेहंदी' 'हृदय में रचने की नयी-नयी सी प्यास' अनुपम संदर्भ की उपलब्धियों में से ही है। अतीत गीतों के परिचित कथ्य को केदार ने सर्वथा नयेपन के साथ भिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। बादल यों में कवि नयी चेतना के

इंगित देता है। 'रचने की नयी प्यास' ही शब्दों के उलट फेर के साथ इस गीत में व्यक्त हुई है, साथ ही 'भावों के बच्चे' नयी चेतना के प्रतीक हैं—

'हम नये नये भावों के बच्चे तुम्हें पुकार रहे हैं'

तथा ये हरी सुनायें गीत दिशाओं को छू आयेंगी' 'भावों के बच्चों' का वक्तव्य नये मूल्यों को हृदयंगम की बात स्वयं में लिए हुए है। ऐसे स्थलों पर केदार नयी कविता के समानान्तर ही गीत-अनुभूति जीता है।

अवस्थाओं को छोड़कर सामान्य रूप से गीतों में अपने सुख व दुख को महत्व दिया जाता रहा है अबतक। विरस विद्यालयों में अनुभवी अध्यापक इसी आत्म निवेदन को गीतों का आवश्यक तत्व बताते रहे हैं इस वैयक्तिकता के समर्थन में (क्यों कि कभी-कभी विद्यार्थी शंका उपस्थित कर देते हैं) उन्होंने प्रयोगवादी गीतों तक से सबके इकट्ठे किये हुए हैं। केदार के कुछ गीतों में ईमानदारी के साथ समष्टिपरक चिन्तन उपलब्ध भी है जो उसे निजी गीत अनुभूत से काट कर अलग कर देती है चिन्तन तो उसका नया है ही, कथन-भंगिमा भी नयी है। 'टूटने दो' गीत रचना ऐसे ही चिन्तन और विचार से सम्पृक्त है—

'अगर रोकी हैं मेरे कदमों पर तुम्हारी लहरें
अगर बसते हैं मेरी बाँहों में तुम्हारे काल
अगर बन्द हैं मेरी मुट्ठी में तुम्हारी कलियाँ
अगर कैद हैं मेरी छाती में तुम्हारे प्राण
तो तोड़ें बाहें
छोड़ें बाहें
मुझे भंवर सभी बोझे की तरह
टूटने दो"

नये गीतों में भाव-बोध-सम्पन्नता के कोण से केदार के गीत किसी भी नये गीतकार के गीतों से अधिक विस्तार पा गए हैं —अज्ञेय के गीत दुरूह तथा एक विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित हैं। इसका कारण है— केदार के गीतों में अपने प्रति समीप बिखरी परिवेश पदार्थ की सहज पकड़ है। केदार 'आम दुखने' की बात करता है 'खिड़की के शीशे के चटखने' की बात करता है पर, दीवार, दरवाजे तथा इसी जैसी

और यथार्थ सामान्य वस्तु सत्यों की बात करता है ये वस्तु-सत्य केदार के गीतों में वर्णनगत तथा प्रतीक-परक रूपों में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु ये प्रतीक इतने स्पष्ट और वर्णन इतना सहज है कि पाठक को ऊहापोह की आवश्यकता नहीं पड़ती । यह समीप यथार्थ पकड़ केदार के गीतों को जहाँ सफलता, कोमलता, आवरणहीनता प्रदान करती है वहाँ उन्हें लोक मानस के अधिक निकट भी ला देती है, निश्चय ही इसमें कवि की लोक गीत दृष्टि की व्यापकता ने बड़ी सहायता दी है।

बिम्बों द्वारा सक्षम अनुभूत प्रेषण में केदार अतिरिक्त रूप से व्यापक हैं । बिम्ब उपलब्धि केदार की कविताओं में जिस बाहुल्य के साथ है, उसी प्राचुर्य के साथ उनके गीतों में भी—है "मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि बिम्ब रचना अर्थात् चित्रों द्वारा उपयुक्त राग-बोध के ऐंद्रिय निर्माण की जैसी क्षमता केदारनाथसिंह में है, वैसी आज किसी कवि में नहीं है। नामवर ने उपयुक्त टिप्पणी केदार की बिम्ब क्षमता पर फरवरी सन् ६० में की थी। इस टिप्पणी को दिए हुए लगभग-चार वर्ष होने को आए उस समय नामवर की यह टिप्पणी-प्रशस्त ही रही होगी, वैसे सम्प्रति भी उस समय बिम्ब उपलब्धि के संदर्भ में लब्धप्रतिष्ठ थे । फिर भी यह स्वीकार कर लेने में कोई हर्ज नहीं कि बिम्ब निर्माण में केदार पर्याप्त सक्षम हैं । बिम्ब सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक चित्र बिम्ब नहीं होता, हाँ प्रत्येक बिम्ब में—चित्रात्मकता (चाहे आंशिक ही क्यों न हो) बनी ही रहती है, खैर ।

केदार जीवित और इन्द्रिय स्पर्शित बिम्ब प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हैं । आज तक की विकसित काव्य चेतना में बिम्ब को काव्य-माध्यम रूप में अब तक की श्रेष्ठ माध्यम सीमा मान लिया गया है। केदार ने 'तीसरा सप्तक' के अपने वक्तव्य में इस तथ्य को अंगीकार भी किया है।

बिम्ब केदार के गीत-कथ्य को तथा मनःप्रसूत भावनाओं एवं राग को मूर्तत्व तो देते ही हैं उसकी रचना प्रक्रिया के पर्दे भी समारोहपूर्वक उठाते हैं। केदार की बिम्ब निर्माण-प्रक्रिया के कई स्तर हैं। कभी तो कवि प्रारम्भ में विषय का संकेत मात्र ही दे पाता है कि बिम्ब प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, जब बिम्बों का क्रम थमता है तो वही बिम्ब अनुभूत भावों बन जाते हैं और सारा कथ्य उजल जाता है। कभी अनुभूति-प्रवाह में बिम्ब पानी के

कुरेदते चलाते रहते हैं, जिससे मूल कथ्य कुछ क्षणों के लिए ओझल हो जाता है और अनुभूति सतह पर बिम्ब ही प्रधान हो उठते हैं किन्तु बिम्ब निर्माण प्रक्रिया के थमने पर विषय इनके माध्यम से उजागर हो उठता है। कवि की सम्पूर्ण चित्रात्मक बिम्बों के प्रति ही अधिक है। वह भाव और विचारों आकार, आकृतियों कार्य और स्थितियों को स्थापित करने के लिए मनःस्थितियों में बिम्ब ग्रहण करता चलता है और उन्हें बिम्बों के माध्यम से अभिव्यक्ति देता चलता है। भाव सहचर बिम्बों के माध्यम से कवि की गीत अनुभूति के नए नए स्तर खोलते चलते हैं, जिससे गीत फलक विस्तीर्ण हो उठता है। यद्यपि इन बिम्बों का गीत कथ्य से अभिधा परक सम्बन्ध नहीं होता विषय के अंश को ही ये अधिक स्पष्ट देते हैं फिर भी शमशेर के चाक्षुष बिम्बों जैसी उपलब्धि केदार के गीत बिम्बों में अति न्यून है और यह उनकी अप्रतिबद्धता के हक में अच्छा ही है। यही कारण है कि केदार का बिम्ब माध्यम से उजागर गीत कथ्य अधिक स्पष्ट और अविराम रहता है। केदार के लगभग समस्त गीत बिम्ब शिल्प से अनुप्राणित हैं। 'मेरा गीत' तथा 'बातों का गीत' में बोधित बिम्ब प्राचुर्य उपलब्ध है—

"झीलों के पानी खजूर हिलेंगे
खेतों के पानी बबूल
पछुवा के हाथों में शाखें हिलेंगी
पुरवा के हाथों में फूल।"

कतिपय बिम्ब—शाम सबेरे दीवार खिड़की, आँगन—केदार के गीत बोध से लेकर कविता बोध तक पूरी तरह अपने हुए हैं। अधिकांश गीतों और कविताओं में उपर्युक्त बिम्बों की पुनरावृत्ति हुई है। इस प्रकार की बिम्ब पुनरावृत्ति तथा बिम्ब सीमित दृष्टि चेतना विकास में अधिक नहीं होती किन्तु केदार इन बिम्बों की इस सफल ढंग से पुनरावृत्ति करता है कि वे विशेष खलते नहीं।

" शब्दों की मधुरता पर वह खास ध्यान देते हैं " शमशेर का यह वाक्य केदार के भाषा बोध के एक पक्ष का ही उद्घाटन करता है—शब्दों की मधुरता है तथा पूरी रचना पर ही केदार खास ध्यान देते हैं)। शब्द के माधुर्य के साथ केदार में उपयुक्त प्रयोग की क्षमता समता है। केदार शब्द-चयन में भी सतर्क है फिर भी उससे कहीं-कहीं चूक हो जाती है और लय आदि के आग्रह के कारण कुछ निरर्थक शब्दों का प्रयोग भी उसे करना पड़ता है। गीतों में तो नहीं कविताओं में कवि 'मीपोमीउम्स' आदि का प्रयोग कर जाता है जिनकी काव्य भाषा में आवश्यकता नहीं। कुछ शब्दों—उसिया बाबू आदि को छोड़कर कवि शब्दों की परख ताजगी और टटकेपन के साथ करता है। शब्दों को लोक व्यवहार की धूल से मोतियों की तरह चुन लेने में केदार एक प्रकार से माहिर है। महक, छलका, भस्सा धड़का तथा इस जैसे ही और अन्य कवि की भाषा विषयक ताजगी और नयापन के साखी हैं।

—उपाध्याय सुरेन्द्र

हिन्दी साहित्य के इतिहासकार और प्रमुख आलोचकों ने हिन्दी गीति काव्य का [illegible] नर पूर्ण रूप से अवलोकन-आलोचन अभी तक नहीं किया है। छायावाद काल में प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी आदि ने गीति काव्य को जो विराटता प्रदान की वह अपने आप में अद्वितीय है। वस्तुतः छायावाद ने यथार्थ तथा प्रकृति को रहस्यमयी गुफाओं में भटका दिया। वस्तु जगत का स्थान भाव जगत ने तथा सार्वलौकिकता का स्थान वैयक्तिकता ने ग्रहण कर लिया। उसने वास्तविकता से आंखमिचौनी खेलकर स्वप्न की सृष्टि की एवं कल्पना का सौंदर्य पट बुनकर, वस्तु जगत को अपनी भावना की तूलि से रंग दिया। इतिहास लेखक छायावाद के पश्चात् प्रगतिवाद का नाम गिना देते हैं किन्तु इन दोनों के मध्य गीति काव्य की धारा अन्तःसलिला-सी प्रवहमान रही है वही धारा उसके पश्चात आज तक अपने स्वरूप में अपनी गति से सतत् गतिमान है। हिन्दी में हर नये प्रयत्न को किसी न किसी "वाद" का चोला पहना देने का चलन सा हो गया है। ये वाद वास्तविकता में कुछ नहीं हैं, बल्कि जितने नये विषयों को जितने नये तरीके से लिखा गया है और काव्य के विविध पक्षों पर जितने प्रयोग किए गए सबको एक न एक नये वाद की संज्ञा देने की प्रथा मात्र का अनुसरण है।

छायावादी डिकेडेन्स में एक और प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं जिसमें चरम निराशा मृत्यु-उपासना और स्वप्न रोमान की प्रधानता है साथ ही छायावाद की सीमाओं में रहते हुए भी भाषा का नयापन इसकी विशेषता है। बच्चन की कविता इसका उदाहरण है "निशा-निमंत्रण" और "एकांत संगीत" में मरण भावना का बाहुल्य स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यहां मृत्यु उपास्य है "एक मुर्दा रो रहा था बैठकर अपनी चिता पर" गीत किसी एकान्त घटना की प्रतिक्रिया न होकर इस धारा की प्रवृत्ति की परिचायिका है। मुर्दनी, रुदन और दहन [illegible] बच्चन के ये गीत वासित-शापित हैं। नीरज भी अपने प्रारम्भिक रूप में ऐसे ही दृष्टिगोचर होते हैं। वे भी मृत्यु को एक दर्शन मान बैठे हैं और उनकी अधिकांश रचनाओं में मृत्यु का स्वर प्रबल रूप से है। नीरज की कविताओं का प्रथम संकलन 'प्रतिध्वनि' में सन् १९४४ से ४६ तक की रचनाएं हैं। छायावादी डिकेडेन्स के सभी स्वर इन कविताओं में प्रतिध्वनित हैं। कुछ देह बलि, कुछ प्यासे अरमान, असफल प्रेम, प्रेम निवेदन तथा कुछ विश्वास और समर्पण की बेचैनी से इन कविताओं का जन्म

हुआ है । इन कविताओं की भाषा और शैली बच्चन से अछूती नहीं है । कुछ कविताओं को छोड़कर शेष में इस संग्रह के गीत बच्चन के मधु संस्करण मात्र हैं ।" 'क्या हुआ कुछ थक गया जो पथ विकल तो शेष है', 'मरने से पहले मैंने निज चाह लिख जाती,' आदि गीत इसी तरीके के हैं । जिनका कथ्य अधिकतर 'एकान्त संगीत' और 'निशा निमंत्रण' का है ।

'प्रतिध्वनि' की कुछ कविताओं में महादेवी की छाया भी स्पष्ट रूप से अंकित है तथा इनमें कहीं कहीं रहस्यवादी भावाभिव्यक्ति की रमणीय छटा दिखाई देती है । 'मैं तो हूँ वो प्राण पारस में', 'कुछ ही कठिन मुक्ति का बन्धन' है आदि में वह सहजता व गम्भीरता नहीं है जो महादेवी में है । 'चिर असीमित मिलन-गृह में चल स्वयं अभिसार,' खोजती उनको कि जिनको खोजती मन प्यास' 'रूप वह मेरा नहीं है, चाह भी वह नैन की है आदि में महादेवी का अपभ्रंश रूप ही है जो नई भाषा लेकर बोल रहा है । मेरे तेरे सम्बन्ध पर हिन्दी में कई गीतों की रचना की गई है । निम्न पंक्तियों को देखने पर छायावादी कवियों और नीरज का अन्तर स्पष्ट हो सकेगा — 'तुम से मेरा सम्बन्ध यही तुम प्यार और मैं पीड़ा हूँ तुम चुम्बन के मादकताकाश में सहज खोजती क्रीड़ा हूँ' । 'प्रतिध्वनि' के कुछ गीत प्रगतिवादी ढंग के भी हैं जिसमें पीड़ित शोषित मानव की दशा चित्रित की गई है । वह भी इस युग का मानव है, नंगी—भूखी माँ ने जिसको जन्म दिया नंगी सड़कों पर जिसने पेट भरा पथ के पत्ते चाट चाट कर' आदि इसी प्रकार के गीत हैं । 'प्रतिध्वनि' की कुछ कविताएँ नीरज के मानवतावादी स्वरूप को भी उभार कर रखती हैं । इसी संकलन से नीरज पर उर्दू कवियों का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है । आगे चलकर तो नीरज उर्दू के प्रभाव में इतने बहक गए कि उनकी बहुत सी कविताएँ हर दृष्टि से उर्दू की ही प्रतीत होती हैं । 'धूल कंचन पर खड़ा है कामना का है नज़रों कफन है आसमान' 'रो रहा है आज क्या रही है चांद को हँसी, राह थक रही है दर्द कारवां लिए हुए' आदि गीत उर्दू के ही लगते हैं ।

'बदरा बरस गयो' में नीरज बच्चन के प्रभाव से अपने आपको मुक्त करने में प्रयत्नशील हैं और एक हद तक वे इसमें सफल भी हुए हैं । संघर्ष' और 'प्रतिध्वनि' के छोटे छोटे गीतों के भाव और शिल्प पर बच्चन का जो स्पष्ट प्रभाव दिखाई दे रहा है वह 'बदरा बरस गयो' के गीतों के शिल्प पर नहीं के समान है । लेकिन विचार, वेदना तथा अतर्मुखता की गुनगुनाहट नहीं है । कथ्य में कोई नवीनता दृष्टिगोचर नहीं

होती है, पर यहां तक आते आते नीरज की भाषा में निखार और भाव-शृंगार की चित्रात्मकता उसकी छटा पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। उक्ति और अभिव्यक्ति में नवीनता तथा उसमें रूपक योजना नीरज की अपनी विशेषता है। 'अस्ति' और 'नास्ति' की दोनों भावनाओं को गुम्फित कर अन्त में नास्ति की प्रबलता दिखला कर चमत्कार पूर्ण ढंग से अपने आपको अभिव्यक्त करना नीरज का निजी कौशल है। 'जिन्दगी न तृप्ति है न प्यास है, क्योंकि पिया दूर है न पास है' इसका उत्तम उदाहरण है। 'कल दिए को उजेरा मिलन पायेगा, क्या पता इस दिया से चमन के तले ये हमारे लिए आखिरी रात है ?' 'ऐसे ही तुम न बैठी यूं आती रहो, देखते देखते भोर हो जायेगा' आदि गीत एक ही भाव का बार बार पुनरावृत्त करते हुए चलते हैं।

नीरज के कुछ गीतों में नियतिवाद की कुछ प्रबलता भी दृष्टव्य है। 'जीता हूँ इसलिए कि जीना भी है एक विवशता।' कुछ गीतों में अंचल जैसी मांसलता भी होती है—'कल का करो न ध्यान' 'तुम्हें मेरी कसम है' आदि गीत इसी प्रकार के हैं। एकाध स्थल पर तो यह मांसलता अति की सीमा को पार कर जाती है— आज भुजबन्ध की सभी बरसात प्रहरों की गली में। 'अब तो मरण गयो' के कुछ गीत आशा, संघर्ष और उत्साह का स्वर लेकर भी उपस्थित हैं। एकाध स्थल पर आशा भी घुटी घुटी है पर कहीं कहीं उसका स्वच्छ और मार्मिक स्वरूप भी व्यक्त हुआ है। 'पन्थ की कठिनाइयों आजतक में हार यह सम्भव नहीं है' 'दीप स्वयं बन गया, उगम चलते चलते मंजिल ही बन गयी मुसाफिर चलते चलते' 'और इसीसे मन में दुख को दुख तुमको सुख देता हूँ' में जो भक्ति की तन्मयता है वह सदैव से भारतीय चेतना का मूल स्वर है। वह प्रबुद्ध चेतना नीरज में अत्यल्प है पर जहाँ है वहां निश्चित रूप से वह श्रेष्ठ रूप में कवि अभिव्यक्त करने में समर्थ हो सका है। नीरज के कुछ गीत प्रेम का या कहिए वासना का मांसल रूप आत्यधिक रूप में प्रस्तुत करते हैं। यहाँ तक कि प्रकृति के उपकरणों में भी संयोग ही संयोग देखते हैं। 'आसमी धूप के तले अभिसार तम है कर रही है, ओस बालों पर कली के चुम्बनों की झर रही है' 'अभी न जाओ प्राण' आदि गीत उद्दाम शृंगार और वासना को उभारने वाले चित्र प्रस्तुत करते हैं। नीरज ने स्वयं वासना के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए हैं— जब तक ये वासना मनमय कोष में व्याप्त रहती है तब तक वह आकर्षण कहलाती है। इस स्तर पर मनुष्य मांसलता से आक्रान्त रहता है और उसके भीतर का पशु प्रबल होता है। पर

पाना तो चाहता है किन्तु देना कुछ नहीं चाहता—यही पाशविक वृत्ति है और इसी का नाम स्वार्थ है। इसी स्तर पर जो रचना की जाती है वह घोर यौन तृष्णा से लिप्त होती है। मैंने जीवन में इस प्रकार का केवल एक गीत लिखा है— 'आज तो मुझ से न शर्माओ तुम्हें मेरी कसम है।' यद्यपि नीरज अपने वक्तव्य में केवल एक गीत की ही स्वीकृति देते हैं पर सत्य यह है कि ऐसे गीत एक ही नहीं अनेक हैं।

'दर्द दिया है' और प्राणगीत तक आते आते नीरज का कवि अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाने में किसी हद तक सफल हुआ है। 'दर्द दिया है' के कुछ प्रगतिवादी गीत जिनमें असंतोष तथा वितृष्णा का भाव अधिक है काव्य का क्रम परन्तु मृत्यु की छाया सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है जहां कवि यह प्रारम्भ करता है कि "मैं ज्वाला का ज्योति काव्य, चिनगारी जिसकी भाषा" वहीं उसी क्षण अनास्था, अविश्वास और क्षणभंगुरता इस चिनगारी को मसल देती है "किसी निठुर की एक फूंक का हूं बस खेल तमाशा" जहां नीरज अपने आप को उपर्युक्त भावनाओं से मुक्त रखकर कुछ लिख सके हैं वहां उनका गीत अधिक निखार पा सका है। "मेरा गीत दिया बन जाये" इस का श्रेष्ठ उदाहरण है। कर्म की इच्छा के स्वर इस गीत की उपलब्धि है। "पहले न जब अंधियारा करे तब जलकर मेरी चिता उजाला" "पहले मेरा कदम पताका बन फहरे जब क्रान्ति पुकारे" आदि में उत्साह है वह गीत को प्राणवान बनाने में समर्थ है। इसी गीत में मानवी करुणा के द्वारा जिस विश्व का निर्माण किया गया है वह प्यार और शुभाशंसा से मंडित है— 'भूखी सोये रात न कोई, प्यासी जागे सुबह न कोई स्वर बरसे सावन आ जाये रक्त गिरे गेहूं उग आये' इसी प्रकार 'मस्तक पर आकाश उठाए, धरती बांधे पांवों से, तुम निकलो जिन गांवों से सूरज निकले उन गांवों से" आदि इस प्रकार के गीतों में नीरज ने जनसामान्य दुर्दशा और विषमता के सुन्दरतम चित्र प्रस्तुत किए हैं।

'दर्द दिया है' और "प्राणगीत" में नीरज ने भूमिकाओं के माध्यम से अपनी कविता की दार्शनिक पीठिका प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। दोनों ही भूमिकाएं प्रायः एक सी हैं। अपने आप को उन्होंने सौंदर्य, प्रेम और मृत्यु इन तीन दृष्टि रूपों का कलाकार घोषित किया है। और इन तीनों को नीरज ने क्रमशः सिति (स्थिति) गति और यति भी माना है। इसीलिए नीरज का यह दावा है कि "जीवन के छत्तीस पृष्ठ पढ़ने के बाद मेरी अनुभूति अब तक तीन सत्य प्राप्त कर सकी है-सौंदर्य, प्रेम और मृत्यु" और चौथा सत्य है रोटी का जिसे नीरज ने प्रेम के अन्तर्गत ही माना है लेकिन

रोटी के माध्यम से मानव एकता तक पहुँचने के लिए नीरज का कोई भी गीत उदाहरण के लिए नहीं रखा जा सकता।

'प्राणगीत' की कई रचनाएं उपदेशपरक और कथन मात्र हैं "प्रेम को न दान दो" "आदमी हो तुम उठो कि आदमी का प्यार लो" आदि में ध्येय बड़ा है, पर जीवन की परिभाषा मौत से कुंठित है—"जिन्दगी की अर्थी पर मौत का खुमार है" इन सारी कविताओं में पुनरावृत्ति दोष अधिक मिलता है। मृत्यु के सम्बन्ध में नीरज का श्रेष्ठ गीत "कारवां गुजर गया" है। इसमें भिन्न भिन्न रूपकों द्वारा क्षणभंगुरता का गान किया गया है। मृत्यु यदि जीवन की अभिव्यञ्जक बन कर गृहीत हो तभी उसे उत्तम कहा जा सकता है। भक्त कवियों की "सूली ऊपर सेज" में अनास्था, निराशा अथवा क्षणभंगुरता के स्थान पर आह्लाद और आनन्द का स्वस्थ विधान ही प्रतीत होता है। नीरज ने भक्तिकालीन ढंग पर नये परिवेश में जो गीत लिखे हैं उसमें विशेष मार्मिकता है-दर्द है-टीस है।

नीरज ने अपने गीतों के द्वारा सस्ती भावुकता का पर्याप्त मात्रा में प्रचार किया है, पर साथ ही उन्होंने अपने गीतों में सजीव दर्द दिया है। सहने की पवित्रता और दर्द की पावनता एक आत्म-उपलब्धि के रूप में बड़ी हो सकती है पर यदि यह दुःख तक ही सीमित हो जाती है तो मानव अपना पूर्ण दायित्व नहीं निभा पाती है "छुट गए सब के रतन सब लुट गए मन के सपन सब तुम मिलो तो जिन्दगी फिर प्राण में जागरण जगाए," आदि गीतों में सजीव दर्द है। संसार की नश्वरता का बोध देकर जो द्विविधा नीरज ने उपस्थित की है वह भी अनूठी है। "एक बोल चल रहा सतत सतत" इसी धारा का गीत है। दर्द यदि आशा से रहित हो जाये और सर्वदा अपना गान ही गाता रहे तो वह एक ऐसी निराशा से अभिभूत हो जाता है जो जीवन की गति को कुंठित कर देता है। दर्द को अपनाने वाले नयी हिन्दी की तरुण पीढ़ी के गीतकारों में नीरज के साथ-साथ रामावतार त्यागी वीरेन्द्र मिश्र, गोपी दास मारिस्त और राजस्थान के तरुण कवि हरीश भादानी भी हैं जिनके गीतों में सजीव दर्द है जिसमें कवि छटपटाता है सिसकता है तड़पता है आकण्ठ डूबता है, "पीड़ा मोड़े मुख हमारे साथ में और दुखों के हाथ हमारे हाथ में" अथवा "हमारा धूप में घर छोड़ को क्या बात जाने हम" को पूछतो हमसे घुटन की घाटियां कैसी लगी आदि गीतों पर मानव गुत्थियों और स्मृतियों के सहारे भी जीवन में उमंग और विश्वास को संजोकर आगे

बरसने के लिए बेचैन और कुछ बरसी ऐसी सारी रात, और कुछ और सुहानी होकर निकली" है लेकिन निराश नहीं, क्यों कि वह जानता है कि "उम्र कटती जा रही है दर्द की, एक दिन इस का जनाजा जायगा" ।

नीरज के गीतों की एक नई उपलब्धि विशेष उल्लेखनीय है और ये गीत हिन्दी साहित्य की एक उपलब्धि हैं। हिन्दी के अधिकांश आलोचक हिन्दी के नवीन गीतों की ओर दृष्टिपात किए बिना ही उन्हें घटिया किस्म का घोषित कर अपने कर्तव्य की इति श्री मान लेते हैं। जरा प्रभाकर माचवे की इस तकरीर का मुआइना कीजिए । 'एक उर्दू पसंद शायर दोस्त से बहुत खोजने पर पता चला कि जो मजमूनों हैं जो हल्किया गजलें तरन्नुम से पढ़ते हैं और मुहावरे चमकाते हैं, वे हिन्दी के गीतकारों की तरह ये, इस दुरवस्था और विचार-तत्त्व से सफाहीन हैं—उनका प्रधान उद्देश्य श्रोताओं को 'केटर' करना है।' माचवे की ये बात कही उर्दू के संबंध में और उसे हाथ चाबुक फटकार दिया हिन्दी गीतकारों पर। मैं इस प्रवृत्ति को शुभ नहीं मानता हूं । नीरज के कुछ गीत उनकी आंखें खोलने के लिए पर्याप्त हैं पर सोते को जगाना सरल है, जागते को जगाना असंभव है। नीरज के जिन गीतों को मैं मानता हूं वे उसके भक्तिकालीन गीत की परम्परा के गीत हैं। इन गीतों का रूप, स्वरूप भाव दर्शन नए परिवेश में प्रस्तुत करने में नीरज को अभूतपूर्व सफलता मिली है ।

> माखन चोरी कर तूने कम तो कर दिया बोझ ग्वालिन का
> पर मेरे घनश्याम बता अब रीती गागर का क्या होगा ।

उक्त गीत में रिक्तता और खोखलेपन का जो बिम्ब विधान एक ही रूपक के द्वारा प्रस्तुत किया गया है वह मार्मिक है, सरल तरल है और पाठक के श्रोता के मन पर अनुभूत प्रभाव डालने में समर्थ है। भक्त का जिस प्रकार से उपालंभ इष्ट आराध्य के प्रति होता है उसे नीरज ने इस प्रकार कहा है– 'अब तू चाहे आंख दिखाए, अब तू चाहे कसम दिलाए, जब तक साथ न तू आएगा मैं भी गीत नहीं गाऊंगा' संत कवियों की परम्परा में गुणानुवाद देने वाले गीतों की कड़ी में नीरज ने अपनी अनुभूति से विराट चित्र उपस्थित किए हैं। 'माँ मत हो नाराज' 'माँ अब मरन न चाहें' 'माँ मत ऐसे टेर' 'माँ अब मोर सुनायें' आदि हिन्दी की गीत परम्परा में माइल स्टोन हैं । उक्त गीतों में एक ही रूपक पूर्ण बिम्ब प्रस्तुत करता है। यहां खण्ड चित्र नहीं है। कांच के छोटे २ टुकड़ों का सौंदर्य नहीं है। वरन एक विराट चित्र है। मीरा की परम्परा में इस

कड़ियों को छू लेने में छोप संकोच नहीं होना चाहिये । इसी तरह "परस तुम्हारा बन गया बरस तुम्हारा ध्यान मन गया" और "निराकार ! जब तुम्हें लिखा स्वयं साकार हो गया । आदि के स्वर रहस्यवादी से लगते हैं पर इनमें रहस्यात न होकर पारदर्शिता है जो सत्य से सुन्दर से शिव से मंडित है । इन गीतों में गीत ऊँचाई दीख पड़ती है । हिन्दी के एक आलोचक ने लिखा है– कुछ कवि हैं जो सौंदर्य बोध के लिए (विशेष करके छोटे छोटे काव्य के टुकड़ों में गृहीत बोध के लिए) सुप्रसिद्ध हैं उनके मन में भी राग की स का उतार चढ़ाव है । यह सब कई छोटे चित्र एक लड़ी में पिरो देने में समर्थ रहती है पर एक चित्र बनाने की बात नहीं आती है यह लड़खड़ा जाती । नीरज ने इन गीतों में एक [illegible] चित्र है और जब राग के साथ समुद्र की लहरों विराट विस्तार है । नीरज का बहुपन भी इन गीतों में जानप्रस्थ से बैठा है । बहुँ की नाजुक बयानी का उपयोग अत्यंत संक्षिप्त बिम्बों में किया जा सकता है पर चित्र को उपस्थित करने के लिए तो वह पंगु ही साबित होती है । यह प्रसन्नता नीरज इस तथ्य को ग्रहण कर सके हैं । इसी प्रकार के स्वर "मेरा जीवन बिखर है" तथा "सारा बाग नजर आता है" आदि गीतों में संजोये गए हैं । मेरा विश्व कि इन्हीं गीतों के कारण नीरज का हिन्दी में अपना महत्व सदैव रहेगा ।

नीरज ने अछूती न्यारी उपमाओं रूपकों और प्रतीकों का प्रयोग किया है । कारण उनके गीतों में नवीनता के साथ साथ आकर्षण भी घुल गया है, नीरज के ये और प्रयोग भारतीय हैं धरती की सोंधी गंध से सुवासित हैं । नई कविता में जबरदस्ती बोलकर जिस काम चलाऊ वृत्ति का चलन है वह नीरज में नहीं है ।

लोकगीतों से सार ग्रहण कर जिन गीतों की रचना नीरज ने की है वे भी वि हैं । इनमें "तूने मुस्काये ऐसे लूटा है इस भरे बाजार में चुनरी तक का रंग उड़ गया सा त्योहार में ।" तथा "बड़ी सजी बारात या घरी सखियों मंगलचार, प्रीति पालकी द्वार पर बैठे हुए कहार दुलहनिया जाने को तैयार" हैं किन्तु लोकगीतों की नकल जो गीत लिखे गए हैं वे सूने सँकरे हैं । इनमें 'कफन बाने का गीत' दोहक १८ नाचा नाचा गीत' 'साधो जीवन दुःख की घाटी' "साधो हम चौसर की गोटी" आदि हैं ।

नीरज के संबंध में अब एक ही प्रश्न शेष रह जाता है वह है उनके भविष्य के है ? इन दिनों नीरज फिल्मी दुनिया ओढ़ रहे हैं । यह दुनिया यदि यह उतार स हिन्दी को उनसे बड़ी बड़ी आशा है पर यदि यह दुनिया उनकी तपस्या से जिन तुम तो नीरज की आत्मा पर भी प्रभाव डाले बिना न रहेगा । इन पंक्तियों के लेखक को कुछ दिन पूर्व नीरज के निकट एक पूरे दिन रहने का संयोग प्राप्त हुआ [illegible] उसे ऐसा लगा है कि नीरज को यहाँ की इमारती जैसी सुघावनी प्रतीत होने लग

अत 'हिन्दी के गरलपीये' हिन्दी की भीरता की इस दीर्घ पथि पर भविष्यत् [illegible] शंकित ही है ।

● डॉ० पदमकुमार [illegible]

मूल्यांकन



ये पाठक

…मन हर्षिया
…राजानन्द
हरीश भादानी
प्रकाश परिमल
शीला भटनागर
रश्मि
सरक
दुर्गा माहेश्वरी

ये पुस्तकें

भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी

१ वाणी
२ सोवण
३ कागज के फूल
४ आँगन के पार द्वार
५ रत्नावली

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

१ प्रवेश
२ हरी बाँसुरी सुनहरी टेर
३ आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेम…
४ गीत भी अगीत भी
५ हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,…

१ विराम चिन्ह
२ त्रिवीथिका

वागेश्वरी प्रकाशन, जयपु…

१ धूप सपनों के तीर

अरुण प्रकाशन, मानस…

१ पर गूँज रह जाती है

★ हरी बाँसुरी सुनहरी टेर : श्री सुमित्रानन्दन पंत । जब कवि अपने सुख दुःख की भावावेशमय अभिव्यक्ति पर ध्यान रखेगा, तो उसकी भावधारा प्रगीत (Lyric) के रूप में ही प्रकट होगी । प्रगीत काव्य मूलतः जीवन की आंशिक अनुभूति की रागात्मक अभिव्यक्ति है जीवन के सम्पूर्ण पक्षों की झांकी नहीं । हमारा तात्पर्य प्रगीत से ऐसी कविता पर है जो भाव-प्रधान हो जिसमें कथा के स्थान पर भावों का उत्कर्ष हो । एक छोटी सी कविता में कवि अपने भावों की परिणति से एकात्मक प्रभाव का सूत्रपात करता है । कवि के हृदय में आविर्भूत भावना के साथ रागात्मक वृत्ति का सामंजस्य होता है, शब्द और संगीत के समन्वय से भावों को रूप दिया जाता है, जो कभी वैयक्तिक और कभी सामूहिक चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं और इसमें एक विचार, स्थिति या भावना का चित्रण प्रधान होता है । भाव सौंदर्य माधुर्य और व्यंजना पर आधारित रहता है ।

पंतजी के प्रथम युग के गीतों में प्रेम की प्रधानता है, मध्यकालीन गीत सामाजिकता की ओर उन्मुख है और उत्तरकालीन प्रगीतों में आध्यात्मिकता की प्रधानता के कारण बोझिलता आ गयी है । पंतजी अपने पूरे काव्य जीवन में मूलतः छायावादी कवि ही रहे हैं । यद्यपि इन्होंने छायावादी अभिव्यक्ति से हटने का प्रयत्न अवश्य किया है परन्तु मूल भावना इनके मानस से जुड़ी रहती है । यही कारण है कि 'वीणा' से लेकर 'वाणी' तक के सभी काव्यों में पंतजी ने सुन्दर प्रगीत दिये हैं । 'हरी बाँसुरी सुनहरी टेर' में कवि के शृंगार प्रधान गीत संकलित हैं । यद्यपि इस प्रकार के गीत पंतजी ने अधिक नहीं लिखे । संकलित गीत अपने समय के सभी प्रसिद्ध मान्य गीत हैं । इन सभी गीतों में शृंगार के वहाव चित्र न होकर उनमें भावना का सहज उन्मेषण है । इन गीतों में हृदय की स्वात्मर्पणिक अभिव्यक्ति, प्रेम के विराट रूप को प्रकट करती है । 'चांद दिये क्यों प्राण प्राणों से' गीत इन गीतों की सफलता का सुन्दर उदाहरण है । 'कब से विलोकती तुमको ऊषा आ वातायन से ?'—ऊषा का वातायन से झांकना कवि की श्रेष्ठ सृष्टि विधायिनी कल्पना का परिचय देता है । शृंगार के दोनों पक्ष—वियोग व संयोग—प्राप्त हैं । पंतजी वासना को परिष्कृति चाहते हैं परिष्कृत संस्कार चाहते हैं, आदर्श प्रेम के हामी हैं, प्रेम को विश्वव्यापी रूप देना चाहते हैं — मानव-हृदयों के मिलन में प्रेम की पवित्रता प्रथम मानते हैं । यही कारण है कि इन शृंगार गीतों

में चाहे वह स्वप्नकालीन प्रतीत हो या माध्यकालीन अथवा उत्तरकालीन सब सभी में प्रेयसी के लिए अभिव्यक्त भाव परिष्कृत होकर आये हैं । पवित्र प्रेम का एक उदाहरण लें—

'मानवता मानव प्रेम सीमा महिमा की
जीवन प्रतिलिपि बन धरती की
स्वर्ग बना देगी यह लिपिका !'

वैसे संग्रह के सभी गीत हर्ष,विषाद प्रमाद से भरे हुए हैं । पर इसमें कुछ ऐसे गीत भी हैं जिन्हें इस संग्रह में नहीं रखा जाना चाहिए था । पंत-काव्य का विद्यार्थी इन गीतों से उनके काव्य अध्ययन के समय अच्छी तरह परिचय पा लेता है । है । प्रस्तुत संग्रह का प्रकाशन से क्या महत्व है,यह समझ पाने वाली बात नहीं लगती। सिवाय इसके कि पंतजी के नाम से यह पुस्तक बिक जाय और आर्थिक लाभ हो ।

× × ×

★ सौवर्ण की सुमित्रानन्दन पंत । प्रस्तुत संग्रह में संगृहीत रूपक हैं जो रेडियो के लिए लिखे गये रूपक किन्तु काव्य रूपक के निकट की रचनाओं की श्रेणी के हैं । हिन्दी में अब काव्य-रूपक काफी लिखे जा रहे हैं पर उनकी ऊंचाई और व्यापक 'सौवर्ण' के रूपकों से कम है । प्रस्तुत रूपकों को प्रतिपाद्य कथ्य पर पंतजी ने अपनी कविताएँ ही लिखी होतीं तो अच्छा रहता क्योंकि इस रूप(Form) की अनिवार्यता 'सौवर्ण' के रूपक अनुभूत नहीं करा पाते। रूपकों की भाषा तो अत्यधिक परिमार्जित है किन्तु वह 'आवेशपूर्ण', 'उदात्त' और प्राणवन्त' नहीं है । रूपक कविता के अधिक निकट हैं । पात्रों के मुख से जो बात कही जा रही है उससे ऐसा प्रतीत नहीं होता कि पात्र स्वयं अपनी बोल रहे हैं ऐसा लगता है पंतजी स्वयं अपनी बात कह रहे हैं, और न ही इसमें नाटकीय गति का विकासमान अनुभव होता है ।

सौवर्ण स्वप्न और सत्य' तथा 'दिग्विजय'—इन तीनों संगृहीत काव्य रूपकों की विशेषता उनकी गम्भीर दार्शनिक-वस्तु है । लेखक के शब्दों में 'सौवर्ण' 'संक्रमणकालीन मानव-मूल्यों के विकास का प्रतीक रूपक'—स्वप्न और सत्य—'आदर्श और वास्तविकता के बीच युग संघर्ष द्योतक काव्य रूपक'–दिग्विजय–'जीवन सत्य की बहिरंतर विजय का काव्य रूपक'–है ।

रूपकों की वस्तु, उनके विचार अत्यन्त गंभीर है यह लेखक के गहन वस्तु निर्बोध से पर्याप्त सिद्ध भी है । किन्तु लेखक द्वारा प्रस्तुत स्थितियाँ और उनके

समाधान तथा उत्तर पात्रों के व्यक्तित्वों से उद्भूत नहीं होते पर ऐसा लगता है जैसे कवि ने पात्रों के लिए मापदण्ड तैयार कर दिये हों । रूपकों में जिस समन्वय की मधुर कल्पना की गयी है, उसमें न नवीनता है न उसकी कोई व्यावहारिक सम्भावना है ।

'काव्य रूपक श्रोता के मन में विश्वास उत्पन्न करने वाला साहित्यिक माध्यम प्रमाणित हो सकता है ।

'सौवर्ण' में स्तुत्य उद्देश्य है,पर क्या कवि इस उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हो पाया है ? 'सौवर्ण' के ये रूपक असफल रहते हैं ।

× × ×

★ वाणी श्री सुमित्रानन्दन पन्त । 'अतिमा' के बाद की कृति 'वाणी' है । यह कृति 'अतिमा' की शृंखला ही है पर जिस प्रकार 'स्वर्णधूलि' का स्वर सामाजिक अधिक हो गया था उसी प्रकार यह कृति भी कवि की सामाजिक 'वाणी' है । बाह्य विषमताओं और अभाव के स्वर अधिक मुखर हैं पर कवि की आशा आस्थावान है और इसी आलोक में वह विकासक्रम के माध्यम से समन्वय और युग को पहचान रहा है । 'सुन्दर कदर्य' 'ऊँच नीच' के भेदभाव को मिटाकर कवि जन जन और मन की एकता की आवश्यकता प्रेमपूर्णता के आधार पर बतलाता हुआ मानवतावादी कवि सामाजिक आदर्श की अवतारणा करना चाहता है । कवि यहां पर भी मानव को भीतर से बदलने की प्रवृत्ति चाहता है ।

कवि का दर्शन इस कृति में पूर्व कृतियों की भांति अरविन्द दर्शन का मैनिफेस्टो बनकर नहीं आया है परन्तु वह काव्य से सुरभित हुआ है । पंतजी बुद्धि के विरोधी हैं अवसर पर उसका निषेध नहीं करते । 'वाणी' में कवि ने अपने आन्तरिक पटों को खोल दिया है और इसी कारण कवि अत्यधिक सूक्ष्म चिन्तन का उपास्थापन कर पाया है । वह जगत से दूर किसी अध्यात्म चिन्तन को पुष्पित न करके उसे मानवीय बनाने की साधना में लगा हुआ है । पंतजी दर्शन को मानवीय व्यवहार और उसकी व्यवस्था में रमा देना चाहते हैं ।

कवि ने विगत युगों की सीमाओं के संकोच को पुन: ललकारा है । और नवीन चेतना के धरातल पर सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है ।

'विकास क्रम' शीर्षक रचना मत रोको निर्मम मत रोको जड़ फिर चेतन बनने की गहन पिपासा 'रूपान्तर' शीर्षक

रचना में 'मानवता को होना फिर से संजीवित' 'सर्व देहि' शीर्षक कविता में 'निर्जिवन हो कोम हो घसहन' 'कर्म देहि' कृति में 'वात्सल्यमयी, कोमे जीवन सुख'— गाति में कवि के दार्शनिक मानस की स्पष्ट झलक है। कवि इस पृथ्वी पर सस्कृत इन्द्रिय-जीवन की ओर गतिशील है मन की कोमल भावनाएं मानव को विश्व की सामाजिकता की ओर अग्रसर करती हैं। कवि विरागियों की श्रेणी —में बनाना चाहता ऐसे ठोस दृष्टिकोण रहने वाले मनुष्यों की आवश्यकता है और ही मानव जगत को समन्वय की ओर ले जायेंगे !

संग्रह की सबसे बड़ी और लम्बी कविता 'मालिका (संस्मरण और जीवन दर्शन) है। इसमें कवि की काव्य चेतना जीवन-दर्शन और मानस-विकास की व्याख्या है। —पूनम बड़िया

× × ×

★ रत्नावली हरिप्रसाद हरि' (पृष्ठ १ ५, मूल्य २०० पैसे।) अतीत का संचय इतिहास है। पथिक पुरुष को उसके गंतव्य से मिलाने वाली है नारी। राम और सीता की गाथा में त्यागिनी उर्मिला का अस्तित्व महत्व रहा तो चेतायों ने संकेत किया। एक कवि ने साकेत' रचा जिसमें उर्मिला का त्याग उसका वियोग बीभत्स हो उठा कैकेयी अत्याचारिणी माँ के बजाये वात्सल्य-मयी विमाता माँ के रूप में स्थापित हो गई।

जिसने कहा था—कि मेरी ममता को विश्वास नहीं हुआ कि रत्ना का रत्नाकर इतना नीच होगा ? कि उसकी प्यार की तृष्णा वासना बन जायेगी, इतनी बढ़ता क्यों ? धर्म ग्रंथ के पन्ने फाड़ डालो ! तृष्णा को जीत कर एक मृत देह का सहारा ले गंगा को पार कर आए, मेरी जड़ देह में हाड़ माँस और चर्म की देह में कौनसी तृष्णा नहीं है ? रत्ना को रत्ना रहने दो उसे सीपी मत करो।

और पश्चाताप से लज्जानत हो तुलसीदास ने अपनी पत्नी रत्ना के चरणों में माथा रख दिया पश्चात्, उसने शेष सनातन की गुरु-दक्षिणा का शुल्क राम चरित-मानस' जैसी अमर निधि की सर्जना कर चुकाया था जिसको समय का आघातक राहु आज तक नहीं ग्रस सका— रत्ना का पति तुलसीदास आज भी महि सीय है अमर है।

हरिप्रसाद'हरि'की रत्नावलीरत्ना की आत्मकथा है। रत्ना नारी थी, नारी की भावुकता उसकी विह्वलता और विरक्ति उसकी वासनाएं,कामनाएं, उसकी पति हित-शुभचिन्तिका प्रवृत्ति, उसकी लोक कल्याण की मंगल भावना ...

सब रत्ना के चरित्र में समाविष्ट है। युगानुकूल मनोवैज्ञानिक सम्मान और सामाजिक दृष्टिकोण के 'कोष्ठ' में रत्ना का चरित्र कवि की लेखनी से जहाँ एक ओर भारतीय पुरातन इतिहास की महान नारियों की भूमिका में स्थान हो सकता है, वहीं दूसरी ओर सहज, लौकिक, साधारणीकरण युक्त, यथार्थ-स्पंदित जीवन्तता पूर्ण बन पाया है।

जीवन की परीक्षा में बैठी हूँ।
मन का प्रश्न पत्र लिये—
सोचती हूँ
कौनसा प्रश्न पहले मैं हल करूं ?
सपनों की ओढ़, या कि
सांसों की पराक ?

रत्ना का चरित्र तीन स्थितियों से गुजरता है ? नियेष व्यतीत तथा स्मृति। कथा रूप स्वयं रत्ना द्वारा आत्म-कथा रूप में कथित है। एक क्रमगत पड़ाव है, पहले परिणय फिर प्रणय सामाजिक-निन्दा से उत्पन्न व्याघात व्याघात से उत्पन्न द्वन्द्व, द्वन्द्व से निर्णीत संकल्प संकल्प जनित क्रिया के परिणाम की विभीषिका विभीषिका के प्रभाव से आग्रत परिताप परिताप से प्रस्पन्द चिन्तना और चिन्तना से मंथित हो विमुक्ति की खोज।

युग दोष-समाधान की गुरु-दक्षिणा का मूल्य क्या था ? 'संस्कृति की ज्योति का यह सभ्यता का चीर जिसे राम्य का दुःशासन खींच रहा है, उस सभ्यता के चीर की बढ़ना है' माया का मोह पाकर है 'हिन्दू का सोया हुआ चैतन्य जग जाये इसलिये स्मृति के चतुर्वर्ण प्राचीन संस्कृति का मण्डन करता है क्योंकि नवनीत है कोई धूल नहीं होती। (भाषा चाहे संस्कृत हो चाहे लोक तथा)।

एक तरफ रत्ना के समक्ष सांसारिक कर्तव्य (पति-मोह) है दूसरी तरफ मानवीय कल्याण की संचेतना है। उस पर पड़े व्याघात जहाँ उसे तोड़ देते वहाँ उसकी वेदना को उसके चिन्तन को जिज्ञासामय बना कर स्फूर्त कर देते हैं। वह सागर को गुफा के मेंटने का उत्तरदायी जानती है तर्क उसे मिथ्या लगता है क्योंकि तथ्यों की गहराई सम्भव तर्क नाप से, सत्यों की ऊंचाई पर चढ़ना मुश्किल है' इसलिये मान मठा है जो छोटे से दीपक के समान होती है परन्तु नीमा में वहीं विश्व से ज्यादा चमकीला प्रकाश देती है विनिमय जीवन का तकाजा है—विनिमय ही विश्वास तर्क तो सीमा बनती है' निर्णय के इस बिन्दु पर आकर रत्ना विमुक्ति की तरफ बढ़ती है' वहाँ है, 'सांसों के पहरुओ! अब सा जाने लुटने दो माटी को। अन्तिम संचय है व यह पीव किस सोच से जायें मुझे इसलि

राम मैं तुम्हारे अमर साथी हूँ—जीवन का ध्येय यही प्रेय यही, सच है राम मैं तुम्हारी हूँ—राम नाम सत्य है।

एकरात्री खण्ड काव्य में कथानक का गुम्फन है, ध्वनीभूत करुणा है, काव्य में उदात्त कल्पनाएं हैं, भाषा में प्रवहमानता है, प्रेम और वैराग्य में सम्पन्न व्यथा का अनूठा सौन्दर्य है। हरि जी का 'एकरात्री' खण्ड काव्य अपनी नयी कथा, अपनी परिपक्वता में महत्वपूर्ण सृजन है—स्वर्गीय कवि की अन्तिम, परन्तु ऊँची उड़ान है दुख को कवि एक सन्धि दे गया है।

× × ×

★ विराम चिन्ह : अंचल (पृ ७८, मूल्य १०००) में 'अंचल' जी के 'विराम चिन्ह' को देख एक जिज्ञासा के साथ जिज्ञासा कि यह जान पाऊं कि कवि ने अपनी काव्य-यात्रा में कितनी दूर पूरी और आज वह कहाँ खड़ा है? या वय की परिपक्वता ने, जीवन के मीठे-कड़वे अनुभव ने उसके विचारों का कोई पूर्व-अपेक्षित दर्शन दिया या कवि पूर्व रूप से रस-रीति सीम धारा भी है, जैसा पूर्व में था जब कि वह अपनी मांसल अभिव्यक्ति वासना पूरित काव्य वृत्ति और निर्लिप्त रम्य वृत्ति के कारण हिन्दी आलोचकों का ध्यान बिन्दु बना था। अपनी बुद्धि की पराजय मानूं कि मैं निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका कि 'अंचल' अपनी रचनाओं में क्या है? ज्यों-ज्यों सोचा अति भ्रमित हुआ अति कौरई-को-बेधाई [?]!

एक तरफ वह प्रेयसी को अतीत में डूबी बातें याद करता हुआ दिखाते हैं। (अपना विन्याकुल सिर मेंहदी रंजित हथेलियों पर रख कर) जिनमें कितनी ही बरसाती रातें बिना सोये कट जाती थीं, और वह भीतर आमत हवों का कायम डेरा करते थे जबकि बाहर मसस्य भरनों के कारण पूरा करते थे या फिर दोपहर को पानीवाली किसी कच्ची उम्र की अभिसारिका से शिकायत करवाते हैं—'कैसे कब हम तुमको प्यार नहीं क्योंकि माँ होती नाराज! शिकायत वाजिब है, क्योंकि आंख को आंखों से आगे सीख कर मिला देते हैं और बेचारी 'नयी नार' (आदि नायिका) के तन में सौ सौ लहरें देते हैं मन मदिरा से सींचकर। प्यार-व्यार की बात है—तन में, आदि देह में जो भी लहरती है! क्या करे बेचारी—अपने यारों की बाती में परमाती डूबती, आंचल में जब देती दांतों से दबाती यह कहती हुई जाती है—'

कोई देख न ले फिर,
कोई देख न ले सी मैं कभी
मेरे तन में कसक कसूरी
तुम अब देखो हो अभी।

बिहारी-देव रीतिकालीन युग के कल्पना रंग बिलासी महान कलाकार थे, अंचल आधुनिक युग के कलाकार हैं'— झूठ नहीं यदि नैतिकता उकायी न करे तो अंचल जी के यह गीत अपने में मेयता तथा अभिव्यक्ति का अनुपम सौंदर्य रखते हैं अंचल जी की साधना की उपलब्धि उनकी कलाकारिता है जो कहीं बहुत रिझाती है कहीं ऐसा खटकती है कि बीभ हो उठती है—यह लीजिये हमें तो स्नेह है तो कुछ मांगे भी नहीं मिलते । कुछ (स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है या पुलिंग में) तीन बातें यह फागुन की रात का पहला स्तवा जबकि दूसरा कलात्मक रूप से सफल है ।

स्वप्न-चारी कवि की कलात्मक कल्पना कभी-कभी जब यथार्थ की रीतता से टकराती है तो यह चीत्कार भर उठता है । कवि का हृदय रो उठता है, मत टूटो मो मेरे जीवन के संचित सपने मत टूटो,' क्योंकि इन्हीं सपनों ने प्राणों को जलने की रीति सिखाई थी जुगे-जुगे मन का यही ठौर ठिकाना था आधार आंखों ने यही सपने से तो लगन लगाई थी । यहीं काटोंभरी विफलताएं है—यहीं जीने का आधार सपना' ही है 'उठे मत टूटो यह संचित सपनों से वो कहते हैं । एक दशा यह भी होती है जब कवि के 'मन का गौरव 'आदर्शों का स्वप्न उसका 'पराजित यौवन' हारों के बावजूद भी संकल्पों की आशा से जगमगाता जीवन, कि जिसकी 'जलती-ज्योति शिखा का, विष पीकर' उजाला भर गया था, उसका वह विश्वास जो युगन की पीड़ा को झेलने के बाद प्राप्त हुआ था, और यही विश्वास सपनों में पलता रहा गीत सुनाता रहा-आज उसी की अर्थी सजती' है क्योंकि—

आज सजावों से सजा के

आगे खोली है कोनाई

आज घरोंदों में जा-जाकर

अब कोयलभी गीत सुनाई

कितनी बड़ी विवशता है कवि की कितना नाजुक युग है !! कितनी तड़प सत्य तथा अन्तर-बहन प्रसूत अभिव्यक्ति है।

कुछ रचनाओं में ऐसा भी लगता है कि 'अंचल' जी की कला समाहित उपासक किसी अज्ञात-शक्ति, कि अदृश्य प्रेरणा शक्ति में, अपने विश्वास, अपनी निष्ठा, अपनी उपासना का आलम्बन खोजरही है जैसे, 'दुःख महासागर मेरा प्रभात लिये आता कोई,' 'किस पर्व कैसा तुम्हारे जन्म जन्मों के अमोही, 'मेरे चिरसाथी उतरो ओ मेरे मन के अविनाशी, जहाँ कवि बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है जब अपने आलोक देवता' की अदृश्य-रेखा देखता है । जिसको, केवल छूना उसके लिये संभव है उसे जीने का अरमान

ता नहीं है। जिसके प्रति वह मन की श्रद्धा तो रख सकता है चरणों का मधु पान वह नहीं कर सकता (गीत ज्योति कुमारी-सी हो चलती)

इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। जीवन की तामसी लालसाएं आयु के साथ शमित होती यौवन अनुभव की चेतनाएं किसी सात्विक आलम्बन को भावनाओं की अभिव्यक्ति का आधार बनाएं, और अपनी अधूरी तृष्णाओं तिलमिलाती विकलताओं से शुभ्र तरंगित भावनाओं की इस चम को गीत में ढाल जायें तो स्वाभाविक है।

अन्त में 'अंचल' जी के बारे में यह अवश्य कहा जा सकता है कि उनकी भावुकता अब भी शब्दों की इतनी बांधक शक्ति रखती है कि गीत गहरी अनुभूति में स्नात निकलते हैं, जो अपने कलात्मक सौष्ठव से पूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं यह सत्य है कि 'अंचल' जी का भावुक गीतकार अब भी अकेला है जबकि उनके साथ के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवि करीब करीब चुक से गये हैं—महज़ बड़ीटे जाना और अपने को झुठला कर अपनी पूर्व अर्जित लोक-प्रियता का ब्याज खाना दूसरी बात है।

× × ×

★ आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत—सं० क्षेमचन्द्र 'सुमन' (पृ ४१६ मू ७०० न.पै) प्रस्तुत संकलन में १०५ कवयित्रियों के गीत हैं, सम्पादक क्षेमचन्द्र 'सुमन' की ग्यारह महीने की तपस्या का यह स्तवक, संकलन का अपना महत्व है। इसके दो कारण हैं—पहला प्रेम पुरुष की अपेक्षा नारी को स्वभावगत कोमल भावी है, अतः उसकी भिन्न-कोणी दृष्टि और बहुरंगी अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। दूसरा कि यह पता चल सकता है कि छायावादी गीत रेखा से वर्तमान तक आते-आते कितनी गहराई आयी है। कितनी कवयित्रियां दर्शन के प्रति आकृष्ट और सावधान हैं कितनी ऐसी हैं जिन्होंने फोटो छपने का सम्मोहन रखा है। इन गीतों में एक ओर जहां भावना की रंगमयता, कल्पना की पेशलता मिलती है, वहां दूसरी ओर नारी की अपनी स्थिति उसकी विवशता भी मिलती है। एक ओर शकुन्तला खरे के सामने रह गई मुक्ति करबद्ध खड़ी, मैंने बन्धन स्वीकार किया' की स्थिति है, तो दूसरी ओर शान्ति सिंहल की शिकायत है कि वह विश्वास की अर्चना और वरदान की कामना कब तक करे क्योंकि, जब तुम्हीं भगवान बन कर रह गये विरह की पहिचान लेकर क्या करूँ, नारी के मोकर्दम में नहीं समता

का परिष्कार प्रस्तुत किया है वहाँ उसको कितनी संदिग्ध और अनुमानों भरी दृष्टि से देखा जाता है उसको शीला गुप्ता इन शब्दों में अभिव्यक्त करती हैं:

मेरा एक चरित्र, दिखाई जाती है
भिन्न-भिन्न कोणों से दुनिया झांक रही
अपनी मन मरजी से काले पर्दों को
उठा उठा कर लघुछिद्रों से झांक रही।

शीला गुप्ता ने पुरुष के अनुमानों का और उसके काले पर्दों का सत्य खोला है, तो प्रेमवती भूषण सेन ने नारी के प्रबल मन की स्पष्टोक्ति की है, 'तुम सजग हो, जब जिधर चाहो चलो प्रिय कौन रोके, मैं हिमालय उपासिनी थी, तो मुझे यह विश्व टोके।

हिन्दी के कुछ अनामी दिग्गजों आलोचकों की कहे-कराये पर कुछ डालने की पुरानी आदत है। एक अव्यवस्था रंगीन साप्ताहिक के अव्यवस्था स्वाद वाले आलोचक महाशय को इस संकलन में गीत के नाम पर फिल्मी धुनें सुनाई दी, उन्होंने फतवा दिया कि संकलन में कुछ गीतों को छोड़ कर बाकी सब बेकार गीत हैं। क्या कहा जाये जिस कलम बनी कोतवाल तो फिर डर काहे का? खैर एक झलक यह भी है, जहाँ मोहक कल्पना अपने पूरे सौष्ठव सहित प्राप्य है:

अभिलाषा के मोह का मंदिर बिखर,

मधु बैन के गीत का मेघ बरसा आकाश तरु में बीतना निरुपमा दुख के बीच का मेघ में तैर कर अधर-कुंई में पुलक बसाना कल्पना चौधरी के-कल्पना के पके हुए दूरकाने पुष्पा पुरी का सुख-का राजमुकुट दुख के सिर पर धरना' मधु अधिम की 'सीपी कौपल को मुस्काई' आंखों के तारे का टूटना मालती जोशी के 'सपनों का कल्पना के पालों में बंधना और नयन के यमुना जल में नहलाने हुए भरों का बहलाना, रमा सिंह के 'नयन में गोधूलि के बादल उठना' राजकुमारी कौल का पलक में स्वप्न का बस भर कर व्योम की क्षितिज रेखा से अटल विश्वासों का सम्बल लेकर निशा को जीना' सजे हाथों पर सपनों के बंदनवार का, 'आशा उमड़ती हुई बदलियों को मन की सहेली बनाना रेखा रामानन्द की पीर से पाषाण का पिघलना और चाँद के प्राण का होठों पर आना' मीरा की 'धरती की हल्की सज्जा का किसी नवोढ़ा के तन-मन में केवड़े की खुशबू-सा भरना, हाथ में मेहंदी रचने से कलियों में फागुन का बौराना, सुनहरे स्वप्नों का बंधा-सा आंचल में बन कर आना' शकुन्तला शर्मा की 'पुकार का मन सुमना को चुपना सा करना, आंखों की पांखों पर आंसू का झूला डालना होठों के दोने पर सांसों का झूलना,

सुमित्रा कुमारी सिन्हा के 'धूम' का 'दीप बन कर समाहित होकर चुभा—प्राण में मुस्कराता और, 'उनके' हृदय का प्रश्न है चिर-सा प्रोत था। कष्ट बन कर जाना और पथ में हीरकों के मुकुट का बिछना था' आदि ऐसी ही कल्पना है जिसमें नवीनता तथा भावना ओत प्रोत है।

यह भाव एक संकलन है, परन्तु संकलन में संकलित गीतों का स्तर कमजोर नहीं है, काफी कवयित्रियाँ ऐसी हैं जो अपने में सम्भावनाएं छिपाए हैं जिनको यदि जीवन उपयुक्त वातावरण दे तथा (जो कि सदैव-त्रस्त भारतीय नारी की सामाजिक विवशता है) तो निश्चित-ही आने वाली पीढ़ी में महादेवी सुभद्राकुमारी सुमित्राकुमारी, विद्यावती कोकिल जैसी कवयित्रियाँ मिल जायेंगी।

—राजाराम

× × ×

★ 'पार्श्व' सं० विद्यानिवास मिश्र (पृ १९२ मू २०० न पै) श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा सम्पादित इस संग्रह के प्रांगण के चार द्वार तक का सम्पूर्ण सा प्रतीप है। यही संहित का विस्तृत कविता जीवन अपने व्यक्तित्व सहित चुका है। इन्हीं चारों संकलनों के माध्यम से वे बृहत्काय विचारपरक कवितावादी कवि को यह देना चाहता हूँ।

ओ पिया... मेरा हिया तरसा की मुस्कुराहट लिये हुए भाव पर बने अज्ञेय ने लिखा था 'सोया है प्रॉव मींचे साथी नदी की कोख पर।' जिसका मुसहुरा पंछी पेड़ को छू कर उड़ जाये उसका मुस्काना स्वाभाविक है और मुस्कुराहट ऋतुराज के आगमन पर प्यार की, दुलार की धूप बना दे तो आश्चर्य क्या? प्रकृति एक-उदासी को जन्म देती है और वह उदासी सभी कुछ मरणधर्मा मानने को विवश कर देती है। मरने के लिए जीवन जीने वाले अज्ञेय पता नहीं किस इस सहसा शक्ति से प्रेरित होकर कह देते हैं मैं आस्था हूँ मुक्ति का श्वास हूँ और तुम मिट्टी मत खोदना टोहना मत कभी चीत्कार को। यही आस्था नदी का द्वीप बन कर स्थिर समर्पण कर देती है— इसलिए कि बहना तो रेत होना है। यह समर्पण उन्नत भावों भावनाओं की नैवेद्य-दान की भक्ति की प्रेरणा हो।

विविध प्रकार जीवन जीनेवाले हिन्दी कविता में प्रयोगवादी आन्दोलन के प्रवर्तक अज्ञेय ने जीवन को अनेक सन्दर्भों में देखा है, अनेक विधा भावों में वे स्वयं को पुकारा है, यही कारण है कि उनमें विविध विचारपरक अनुभूत यानि

पंक्तियों के सृष्टा हैं।

औद्योगिक बस्ती में चिमनियों का धुआं, विषमतायें और कुण्ठा-बाधायें देखने वाले अज्ञेय आज महायोग की कविता में डूबते-उतराते अध्यात्म चीत्कार की अभिव्यक्तियाँ किये जा रहे हैं, हिन्दी कविता को अपनी सम्पन्नता पर गर्व है। सम्पादक को [illegible] है सम्पूर्ण अज्ञेय के प्रस्तुतीकरण के लिए बधाई।

× × ×

★ आँगन के पार द्वार — अज्ञेय (पृ ६०, मू १०० न पै) एक लौटे हुए यात्री का आत्मोन्मुखी अस्तित्ववादी चिन्तन परम्परा के अनुगामी (अज्ञेयी!) का नवीनतम सम्प्रदाय—आँगन के पार द्वार—जिसे साहित्य का एक खास समुदाय पर चाहता है—कविता के रूप में समायोगमुखता के रूप में यथित भाई (धर्मयुग में) की भांति पंक्तियों के माध्यम से मानवीय आधार पर लोकोत्तर सत्ता के प्रति बौद्धिक समर्पण करनेवाले यात्री-अज्ञेय तक इस खास का पहुँचना सम्भव न हो।

अज्ञेय आज के साथ ही एक गम्भीर व्यक्तित्व सामने आता है जिसका कविता-सृजन तीन पंक्तियों से तीन सौ से अधिक पंक्तियों की कविता तक विस्तृत हुआ है और इन कविताओं के मूल स्वर एकान्त मौन, आत्मरत अहम परिष्कार, समर्पित पीड़ा-बोध की परिभाषित निर्वैयक्तता मानव संस्कृति का ईश्वरीय आधार आदि-आदि रहे हैं।

अज्ञेय एकान्त-प्रिय हैं, अज्ञेय कवितावादी हैं अज्ञेय अपनी कविताओं में मार्क्स या सार्त्र की अवधारणाओं से बहुत दूर चले गये हैं यह सब स्वीकारते हुए भी उनके कृतित्व में घुली हुई समायोगमुखता कई बार प्रश्न चिह्न सी बना करती है, ऐसा साहित्य के कई खास शाम सोचते हैं।

यह सोचना इसलिये भी स्वाभाविक है कि अज्ञेय व्यक्ति के अस्तित्व और उसकी रहस्यमयता के चिन्तन में सार्त्र के अधिक निकट हैं कि अज्ञेय भी चिन्तन मात्र बौद्धदर्शन के शून्यवाद से प्रभावित हैं कि अज्ञेय ईश्वरीय सत्ता के विरोधी विद्रोही हैं पर सत्ता को कहीं अस्वीकारते नहीं और कि अज्ञेय पाश्चात्यतक नवीन सन्दर्भों की अनुभवता करते हुए भी अन्ततः हीन एकान्त चिन्तन के क्षणों में महापुरुष के साथ चाँवर ढेरी तथा नदी की आत्मोपलब्धि करते हैं—यही उनकी 'अहं' के 'तुम' तक जानेवाली समायोगमुखता है जिसे वे पाठक जिन्होंने अज्ञेय के पुणानुमूलता के नाम पर अन्वेषण और 'अगोय' के लिये पूर्ववर्ती कविता (छायावादी प्रगतिवादी प्रयोगवादी!) के समस्त पूर्वाग्रहों

...ने त्यागने के आन्दोलन को देखा होगा, ...ही समझ पा रहे हैं । उन पाठकों की ...व मानसिकी को स्थिति-जन्य विवशता ...ने कहा जा सकता है ।

विपरीत कोणों को समझों से ...देखना महत्त्व-पूर्ण है कविता को दृश्य ...र आन्तरिक आग्रह के साथ व्यक्तित्व के ...स्तित्व की खोज के प्रयोग करना नदी ...के बाहर, द्वीप को अकेली बनाना अज्ञेय ...की तीव्र जिज्ञासायें हैं, और ये जिज्ञासायें ...भारतीय चिंतन साहित्य की ही नहीं ...समस्त मानवीय चिंतन की उपलब्धियां हैं।

अज्ञेय जिसके मौन में समस्त ...वासनाओं का दाह कर 'ओ पि मेयस् ...ल्वर्सिप्स' का निर्वैयक्तिक प्यार प्राप्त करना चाहते हैं वे महाशून्य के शिविर में रहते हुए प्रकाश के पारावार तक पहुंच जाना चाहते हैं ।

अज्ञेय एक अद्वैत हिन्दी कविता हैं, अद्वैत चिंतक हैं दार्शनिक हैं और संस्कारों से मुक्त यह कवि आधुनिक युग से अपना ...आ रहा है । इस निरत उसकी प्रक्रिया में 'तू' अनुभव होता है या नहीं यह तो नहीं कहा जा सकता हां हिन्दी कविता अज्ञेय के साथ निरंतर अनूठी परिष्कृत बनी होती जा रही है आँगन के पार द्वार इसका पुष्ट प्रमाण है ।

पर नई पीढ़ी के साहित्यिक छात्रों को अज्ञेय के कृतित्व में समाजोन्मुखता पर अपने प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा रहेगी । बहुत सम्भव है, यह प्रश्न अनुत्तरित ही रहे क्योंकि परिष्कृत-बोध कविता का दर्शन और शून्य की ओर उन्मुख होना कविता की स्वाभाविकता माना जा सकता है, भारतीय चिंतन तो दर्शन की धुरी पर ही घूमता है फिर अज्ञेय तो स्वयं शून्यवादी चिंतन के अधिकारी विद्वान हैं । फिर भी प्रश्न तो यथावत ही रहेगा उत्तर आने तक ।

—हरीश भादानी

★ कागज के फूल : भारतभूषण अग्रवाल (पृष्ठ ११६ मूल्य १०० न प) श्री भारत भूषण अग्रवाल की सद्य-प्रकाशित पुस्तिका 'कागज के फूल' देखने को मिली । देख कर मैं ही मन में एक 'कन्फ्यूजन' प्रकट हो आया । क्या यह वही भारतभूषण अग्रवाल हैं जो हिन्दी काव्य में नवीन चेतना के उत्तरदायी संवाहकों में से एक हैं । कहा जा सकता है कि हास्य का अपना एक अलग दायरा होता है और गाम्भीर्य को उसमें जानबूझकर तोड़ना ही पड़ता है, किन्तु भाई गम्भीरता को तो तोड़ने वाले क्या हिन्दी में अब तक दो एकमात्र महारथी बच रहे थे ? क्या गोपालप्रसाद व्यास,

केशवचन्द्र वर्मा, काका हाथरसी बेढब बनारसी प्रभृति हास्य-व्यंगकारों की कलमों को लकवा मार गया था ?

किन्तु दरअसल बात कुछ और ही है। कुछ ईमान हो कोई परम्परा बने अपने ही नाम से बस यही एक गुर सबके अन्दर मूलरूप से विद्यमान है। यद्यपि जैसे समर्थ और तटस्थ द्रष्टा भी जब इस प्रवृत्ति के अपवाद न हो सके तो हम आपकी क्या बिसात है कि हम उससे बच रहें ? फलत एक नहीं बहुत से 'कागज के फूल' बदल-बदल कर सजाए जाएंगे साहित्यिक ड्राइंग रूमों में चाहे उनमें वजन हो या नहीं। तुक्तकों का यह जो बड़े व्यापक पैमाने पर मात्र हल्का हो रहा है— यह एक बने बनाए ढर्रे के अलावा कुछ और दिखाई नहीं देता (करीब-करीब वैसा ही एक स्टण्ट जैसा अभी इन दिनों बच्चन और पन्त के बीच में शुरू हुआ दिखाई देता है) वरना क्या कोई भी समझदार पाठक इस बात की गवाही दे सकता है कि तुक्तक समसामयिक लेखन के समानान्तर बहती एक अपरिहार्य परम्परा है (ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार प्रयोग वाद और नई कविता कभी रही थी) यदि नहीं तो प्रश्न उठता है कि व्यक्तिगत मूल्यों के इन तुक्तकों को पुस्तकाकार रूप में संग्रहीत कर क्यों प्रकाशित किया गया है ? क्यों भारतभूषण के नाम पर भारतीय ज्ञानपीठ से प्रका शित होने वाली किसी अच्छे स्तर की दूसरी कृति को केवल इन तुक्तकों के प्रभा से प्रभावपरक रूप से स्थगित किया गया ? ये सब बुनियादी बातें हैं जिनका उत्तर मिलने से पूर्व काव्य के जिज्ञासुओं पर ऐसी प्रवृत्तियां महज इसलिए थोप दी जाती हैं कि इनका समारम्भ एक ऐसे व्यक्ति द्वारा हुआ है जो घूम फिर कर वहां साथियों के लिए कभी काम का साबित सकता है।

हिन्दी के आधुनिक साहित्य का अपकर्ष बहुत हद तक इसी प्रकार के पिट पैंतरों द्वारा हुआ है और जब तक इसके विरोध में कोई प्रबल आवाज नहीं उठा जायगी तब तक पाठक का शोषण ब नहीं होगा। आधुनिक हिन्दी साहित्य लेखक-पाठकों की जितनी संख्या है उ कदाचित पाठकों की भी नहीं है। यह हि के भविष्य के लिए बड़ी चिन्ता की बात है। इसलिए इन तथाकथित लेखक-पाठकों की प्रशंसा प्राप्त करके जो आगे बढ़ते रहना चाहते हैं वे सिद्ध साधक हिन्दी के अहित होने के अलावा और कुछ नहीं हो सकते। बच्चन अथवा माचवे की

इसलिये इस बात का सार्टिफिकेट कदापि नहीं है कि ७८ मुक्तकों (टिपों) की रचना की है। इससे के मुख्य से पाठक वर्ग के सम्मुख निबद्ध रख दिया जाय। हम है कि भारतीय ज्ञानपीठ को जो ज्ञान की विलुप्त अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री के अनुसन्धान और प्रकाशन का बीड़ा ले चुकी है इस प्रकार की रचनाओं के मानधारियों के हीच में ही प्रकाशित नहीं कर देना चाहिए था।

'कागज़ के फूल' के मुक्तकों को तीन भागों में बांट सकते हैं।

(१) आधुनिक सामान्य जीवन के मुक्तक

(२) व्यक्तिगत मुक्तक

(३) निहायत निरर्थक मुक्तक।

शिष्ट हास्य व्यंग्य की एक परम्परा होती है। भाव और अभिव्यक्ति में वह सूरे मजरे मिसरों की भांति 'मरसियों' कभी नहीं होती और चूंकि सामाजिक अथवा वैयक्तिक चारित्रिक दोषों और बासी मान्यताओं का प्रकटीकरण हास्य व्यंग्य के प्रायः सब प्रसंगों का मूलाधार है। इस हेतु ऐसे साहित्य में स्तर को कायम रखने की बड़ी आवश्यकता रहती है। क्योंकि जरा भी सी असावधानी से व्यक्तिगत आक्षेप अथवा कटुता तक आ सकती है और वर्ण्य विषय के घटिया होने के साथ ही हास्य व्यंग्यकार का स्तर भी उतना ही घटिया हो सकता है। इन मुक्तकों को पढ़ते समय मेरे एक साहित्यिक मित्र ने कहा'—'कागज़ के फूलों में कभी न मुरझाने वाली जो क्षमता होती है वह इनमें कदापि नहीं है—इन्हें एक बार देखकर तो दुबारा न देखने की इच्छा हो जाती है—कागज़ के फूलों का सौन्दर्य कम से कम इस अर्थ में सुहाने वाला होता है कि उनमें नक़ल करने में चातुर्य प्रदर्शन किया गया होता है। पर ये तो रंग-रूप हीन कागज़ के टुकड़े हैं जिन्हें फूल कहकर हमें भरमाया गया है।

इसके बावजूद भी यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि आधुनिक जीवन के जिन बहुत से पहलुओं को भी भारत भूषण ने स्पर्श किया है वे नीचे लिखे मुक्तकों में प्रकट हुए हैं।

(१) 'फेल हैं' रखने वाला मुक्तक (परीक्षार्थियों तथा सिफ़ारिशबाजी पर व्यंग्य)

(२) सा सा रे रे गा-गा मा मा साधना

(३) चुन री ओ मेहर रो—

(४) धूप की रूप की

(५) नाम केटी

(६) नाम और धाँधबाजी नई नई फिल्में

(७) दिल्ली कम्परवा सेठ

(८) घर के बबाजी ने छलमा कमकस

प्रस्तुत पुस्तक के व्यक्तिगत मुक्तकों में शमशेर, गिरिजाकुमार, माचवे मुक्ति बोध, अज्ञेय आदि पर लिखे गए मुक्तक

ठीक है—यादव श्यामसुन्दर 'सावन', हिन्दी आदि पर लिखे गये पुस्तक केवल होली पर हैं। लिखे जाने योग्य हैं। अन्यथा नैतिक विद्वेष को बढ़ानेवाले साबित हो सकते हैं।

इसके अतिरिक्त विज्ञापन निरर्थक पुस्तकों में (१) मोटी से किसे के एक साथ साथ मिलते (२) अमेरी गली में बस कुत्ता एक भौंका (३) जंगल में पहुँचे के काटने को लकड़ी (४) भौंक भी न आई और किसे भी न तारे (५) रेलवे का इस्तेमाल और कवि (६) नवोढ़ा को रोका आदि हैं। ऐसा लगता है जैसे पुस्तक की पृष्ठ वृद्धि के लिए यह सब किया गया है। अतः में हम इतना ही कहेंगे कि श्री भारत भूषण को अपने अनुपयुक्त यह कार्य छोड़ कर पुनः कविता के क्षेत्र में पदार्पण कर लेना चाहिए। एक विनोदी और हास्य व्यंग्यकार में अन्तर होता है यही ध्यान में रख कर एक पुस्तक हमने भी लिखा है यह इस नीयत से नहीं कि पुस्तकों की गलत परम्परा में यह भी एक पोस्ट हो बल्कि इस नीयत से कि हिन्दी काव्य से यह निरर्थक परम्परा जल्दी ही समाप्त हो जानी चाहिए—

दफ्तर के मालिक को कहते हैं बाबू
ठेकेदार लिखने वाले होते बेकाबू
पीए काव्य पुस्तक
लिखने लगी पुस्तक
ऐसे विनोदी नए सर्जक हैं बाबू ॥

★झिलमिलिया डॉ० महेन्द्र भटनागर (पृ० ८० मू० १०० न० पै०) 'झिलमिलिया' में डॉक्टर महेन्द्र भटनागर की १९४० से १९५६ तक लिखी तथा प्रकाशित हुई कविताओं का संग्रह है। इनमें से अधिकांश रचनायें सब हारा वर्ग के प्रति प्रोग्रेसिविस्ट सहानुभूति जाहिर करती हैं तथा कुछ रचनायें कवि के वैयक्तिक भाव बोध को प्रकट करती हैं। इन रचनाओं में कवि अपने को वर्णनात्मक गद्य के प्रभाव हीन स्वर तक खींच ले जाने की सीमा तक सरल हो गया है काव्य में सरलता का प्रकट होना उसके प्रसाद गुण को व्यक्त अवश्य करता है किन्तु 'झिलमिलिया' की सरलता में गहराई नहीं है इसलिये इसकी कवितायें अपनी भाव भूमि में काव्यात्मक होती हुई भी वाह्याभिव्यक्ति में प्रभावित पद्य ही लगने लगती हैं। पाठ्य पुस्तका-त्मक आदर्श को अपने में समाहित करती हुई झिलमिलिया की रचनायें किसी भी भांति अपने समय में लिखी जा रही 'भी' श्रेणी की रचनाओं में भी नहीं आती। कोई भी पूर्ववर्ती छायावादी अथवा प्रगतिवादी कवि अपने कथ्य और अभिव्यक्ति में डॉक्टर भटनागर से अधिक प्रभाव शाली हो सकता था। इस हेतु १९१२ में पुस्तक का प्रकाशन तो और भी असामयिक प्रतीत होता है। इसे युग की अथवा

गुस कि शंकर महेन्द्र समसामयिक सृजन से निराश ही कर गये हैं समसामयिकता या कोई भी स्वर कहीं छू नहीं सका है और ऐसा लगता है जैसे वे इसके साथ ही साहित्यिक प्रतारणामिता से भी मुक्त हो गये हैं 'त्रिवीथिका' की कविताओं को अपनी सुविधाओं के लिये हम तीन भागों में बांट सकते हैं।

१ वैयक्तिक भावावाद से प्रेरित रचनायें
२ प्रोलेटेरियट की रचनायें तथा
३ मार्क्सोन्मुख यथार्थवाद की 'हम तुम' वाली रचनायें

पहली में सी की रचनाओं में 'लेकर-विमल' 'मनोविहग' न जाने कितने अज्ञात 'परिचय' नामक रचनायें आ सकती हैं। ये रचनायें या तो वैयक्तिक भावावाद की मरीचिका में भटकी हैं या अनागत भविष्य की सुखद कल्पना में डूबी हुई सी लगती हैं। आज-कल को जीने और भोगने वाला पाठ का कलाकार इस प्रकार के भावावाद को कभी भी अभिव्यंजना के योग्य नहीं मानता। इन रचनाओं में कहीं भी ऐसी पंक्तियां ढूंढने पर नहीं मिल सकतीं जिनमें स्वानुभव का भार हो। कवि और सहृदय विशिष्टतः वैयक्तिक संदर्भ में जितने हो सकते हैं उतने किसी अन्य क्षेत्र में नहीं किन्तु इस संदर्भ में यदि कोई 'त्रिवीथिका' का पाठक हो तो उसे निराशा ही होगी।

'त्रिवीथिका' की प्रोलेटेरियट स्टण्ट की रचनायें पढ़कर ऐसा लगता है जैसे आज भी दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति दिखाने वाले किसी भी व्यक्ति को एकाएक कवि बनने का सुअवसर मिल सकता है। मजदूरों की वीभत्स स्थितियाँ यद्यपि इनकी रचनाओं में नहीं हैं तथापि इन कविताओं के स्वरों में दलित वर्ग की चिर परिचित मांगों तथा उनको दिये जाने वाले समाजवादी आश्वासनों की बारम्बार पुनरावृत्ति हुई है। मैं कहता हूँ', 'राही' 'अनुष्ठान' 'क्योंकर' 'निश्चय' 'झुकना होगा', 'तुम साथ लिया दो', 'जनता' 'श्रमिक', 'नयी सुबह' और 'ओ मजदूर किसान' प्रभृति रचनाओं में प्रोलेटेरियट यूटोपिया के स्वर मुखरित किये गये हैं।

मार्क्सोन्मुख यथार्थ की 'हम तुम' सम्बोधन वाली रचनाओं में 'हिम्मत न हारो', 'प्यार' 'हमें यह पता है यह नहीं मंजिल', 'तूफानों का स्वागत' प्रभृति रचनायें सम्मिलित की जा सकती हैं। कवि हमारी तुम्हारी पीड़ाओं को नव विश्वास के मल-हम से उपचारित करना चाहता है।

'त्रिवीथिका' की बहुत सी रचनायें तो अपरिपक्व भाषा के उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। यथा —

पतझरों व मधुवनों प्रतीक से
जो प्राण पुष्प की हरारत से
पिघला बना दर्द
वह बस
प्रभावों की हर मंजिल तय करके
दुनियां का नक्शा
बदल कर रहेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १९६२ के अनेक साधारण स्तर के भावात्मक प्रकाशनों की शृंखला में हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी का यह प्रकाशन भी एक मोड़ ही है।

—प्रकाश 'परिमल'

*गीत भी अगीत भी नीरज (पृ० १०२ मू० ३.०० नये) गीत भी अगीत भी' नीरज के नये-पुराने गीतों-अगीतों का संग्रह है। जहाँ तक गीतों का प्रश्न है वे लगभग सबके सब विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं, समय समय पर उन पर विचार भी हो चुका है। वे सब अच्छे लगते हैं। नीरज के गीतों की अपनी शैली है अपना कथ्य है। पुराने-पन के नाम पर उन्हें कोसना अच्छा नहीं क्योंकि कथ्य और शैली के पुरानेपन के बाद भी इन गीतों में एक नवीनता है और यह नवीनता नीरज की अपनी है—पहले सुनने में वे अच्छे लगते ही। और फिर नीरज कब चाहता है कि लोग उसके गीतों को सराहें ही वह तो कहता है—

विश्व चाहे या न चाहे, लोग समझें
या न समझें
आ गये हैं हम यहाँ तो गीत गाकर
उठेंगे।

कुछ गीत तो बहुत ही प्यारे हैं यथा 'सारा जग बंजारा होता' 'सारा जग मधुबन लगता है' 'अब तक जाता नहीं' आदि।

कुछ समय पूर्व नीरज पर एक आरोप लगाया गया था कि वह दर्शन। बाहर थोपने का असफल प्रयास कर है। कबीर और मीरा की परम्परा में लिखने का उनका प्रयास-आभास कुछ ऐसा लगता है यथा-आबरे। दुनिया हर सन मैला एवं 'मा बस मरन न कहूँ' आदि गीत पर सच पूछा जाये तो नीरज का अपना कोई दर्शन नहीं है। और अगर है तो उसकी कृतियों में पूर्णतया उभरा नहीं है। फिर यह अनिवार्य कब है कि गीतकार दर्शन रखे ही। अपना नये गीतकारों पर नीरज का प्रभाव निर्विवाद है और नीरज प्रसिद्ध भी गीतकार के रूप में ही है। किंतु इस संग्रह में 'अगीत' भी हैं। लगता है प्रयास किया है नीरज ने अपने आपको 'नये-कवियों' की पंक्ति में खड़ा करने का पर जब 'धनी-निर्धन' और 'भवा हिसाब' जैसी कविताएँ सामने आती हैं तो लगता है, नीरज अभी बहुत पीछे हैं।

शायद हिन्दी में परम्परा ही कम रही है, एक ही संग्रह में गीत प्रगीत, लोकगीत लोकधुन, सब कुछ देने की। बच्चन 'के चार खेमे चौंसठ खूंटे' और प्रस्तुत संग्रह इसकी साक्षी है पर अच्छा हो यदि एक ही संग्रह में विभिन्न प्रकार की कवितायें भी आयें तो उनका अनुपात हो ताकि उनको एक दूसरे के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सके। वैसे पढ़ने पर के लिये ऐसा संग्रह कोई विशेष अनुचित नहीं।

—शीला भटनागर

★सुधि-सपनों के तीर मणि मधुकर और दो मोती ही नहीं मुझसे जितनी बन पाई है कच्ची-पक्की फसल काटकर मैंने एक जगह जुटाई है—और मणि-मधुकर की इस कच्ची पक्की फसल (सुधि-सपनों के तीर) में वही आनन्द है जो फागुन की कच्ची पक्की फसल की फसल में होता है। 'हर कदम पर सैकड़ों बम चाहने वाला यह भावुक युवक कवि बचपन को प्यारी मुस्कान को समेटे आगे आज कल के प्रति नई आस्थाओं के संकेत देता है—'मीत सुर मौसम जीने के लिये।

प्रस्तुत पुस्तक का कवि अपने आप को खोज रहा है। आशा-निराशा जीत हार का एक मिश्रण सा आता है, वह अपने में। कभी तो उसे अपने आप पर इतना विश्वास होता है कि वह आ सकता है और कभी उसे अपने प्रति एक विरक्ति

मेरे असमय भर आने का सदमा पहुंचा
है बहार को
मधुबन वाले रोज रोज सावन से मुझे
संवार रहे हैं।

भी होने लगती है।

देश काल बदला था जिसमें वह कालक्रम समाप्त हो गया। कहना न होगा कि अब की यह अनिश्चितता कवि के इरादों को एक नया बल सा दे रही है।

गीतों में मधुकर ने नयी अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। यथा बालों को 'रूपसी प्रिय की प्यारी पनिहारिन' व तीर को 'रिमझिम पनिहारिन' की उपमा देना तथा शाम को बढ़ती छायाओं के लिये 'गिरवों से डर कर छायायें पसर चलीं' विपरीत कहना कितना प्यारा लगता है।

गीतों के अतिरिक्त पुस्तक में मुक्तछंद की कवितायें व मुक्तक भी हैं। कहना न होगा कि मुक्तछंद में कवि नहीं अधिक उभरा है। गीतों में तो कहीं कहीं वह सचमुच ही छंदों में बंध गया है। और उसने इसे स्वीकार भी है—'मेरा संसार स्वर स्वच्छंद है छंदों की बस्ती में।' मुक्तछंद की कविताओं में 'सम्बोधन तीन' 'अंधेरे में पास-पास' आदि कविताओं में अभिव्यक्ति कहीं अधिक मुखर हुई है।

राजस्थानी कवि की अपनी भाषा है। अतः अनुभूति की पकड़ और अभिव्यक्ति की सम्पूर्णता राजस्थानी गीतों में बहुत जगह देखने को मिलती है।

मधुकर की यह पहली कृति आने

पहचानों व अपहचानों प्रयोग से
जो मात्र युग की हरारत से
पिघला जमा बर्फ
यह बस
प्रभावों की हद सचित बन करके
दुनिया का नक्शा
बदल कर रहेगा ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १९६२ के अनेक साधारण स्तर के प्रकाशनों की शृंखला में हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी का यह प्रकाशन भी एक योग ही है ।

—प्रकाश 'परिमल'

*गीत भी अगीत भी नीरज (पृ० १०१ मू० १००नये) गीत भी अगीत भी नीरज के नये-पुराने गीतों-अगीतों का संग्रह है। जहां तक गीतों का प्रश्न है, वे लगभग सबके सब विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं, समय समय पर उन पर विचार भी हो चुका है। वे सब अच्छे लगते हैं। नीरज के गीतों की अपनी शैली है अपना कथ्य है। पुराने-पन के नाम पर उन्हें कोसना अच्छा नहीं क्योंकि कथ्य और शैली के पुरानेपन के बाद भी इन गीतों में एक नवीनता है और वह नवीनता नीरज की अपनी है—पढ़ने सुनने में वे अच्छे लगते ही। और फिर नीरज यह चाहता है कि लोग उसके गीतों को सराहें ही वह तो कहता है—

विश्व चाहे या न चाहे, लोग समझें
या न समझें,
आ गये हैं हम यहां तो गीत गाकर ही
उठेंगे।

कुछ गीत तो बहुत ही प्यारे हैं प... सारा जग बंजारा होता' सारा जग मधु... लगता है अब सहा जाता नहीं' आ...

कुछ समय पूर्व नीरज पर एक ... आरोप लगाया गया था कि वह दर्शन की ... बाहर खोजने का असफल प्रयास कर रहे हैं। कबीर और मीरा की परम्परा में ... दिखने का उनका प्रयास-आभास कु... ऐसा लगता है अथवा-भावो। दुनिया ... धन मिला एवं 'मा बस मरण न जाऊं' आदि गीत पर दृष्टि पड़ जाये तो नीरज का अपना कोई दर्शन नहीं है। और अगर है तो उसकी कृतियों में पूर्णतया उभरा नहीं है। फिर यह अनिवार्य कब है कि गीतकार दर्शन रखे ही। अपना नये गीतकारों पर नीरज का प्रभाव निर्विवाद है और नीरज प्रसिद्ध भी गीतकार के रूप में ही है। किंतु इस संग्रह में 'अगीत' भी है। लगता है, प्रयास किया है नीरज ने अपने आपको 'नये-कवियों' की पंक्ति में खड़ा करने का पर जब 'पगी-निर्धन' और 'धता हिसाब' जैसी कविताएँ सामने आती हैं तो लगता है, नीरज अभी बहुत पीछे है।

शायद हिन्दी में परम्परा सी चल पड़ी है, एक ही संग्रह में गीत प्रगीत, लोकगीत लोकधुन, सब कुछ देने की। सम्भव कि चार पैसे चोखड़ छूटें और प्रस्तुत संग्रह इसकी साक्षी है, पर अच्छा हो यदि एक ही संग्रह में विभिन्न प्रकार की कवितायें दी जायें तो उनका अनुपात हो ताकि उनको एक दूसरे के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सके। वैसे पढ़ने पर के लिये ऐसा संग्रह कोई विशेष अनुचित नहीं।

—सीता भटनागर

★धूप-सपनों के तीर मणि मधुकर 'मोर हो बोकर ही कहीं मुझसे तितली बन गई है कच्ची-पक्की फसल काटकर मैंने एक जगह चुगली है'—और (मणि-मधुकर की इस कच्ची पक्की फसल धूप सपनों के तीर) में यही आनन्द है तो फागुन की कच्ची पक्की फसल की शक्ल में होता है। 'हर कदम पर सैकड़ों पथ चाहने वाला यह भावुक युवक कवि इमरान की प्यारी मुस्कराहट को समेटे अपने मन के प्रति नई धारणाओं के संकेत देता है—'बीस कुछ मोहताज जीने के लिये।'

प्रस्तुत पुस्तक का कवि अपने आप को टटोल रहा है। आशा-निराशा और हार का एक मिश्रण सा पाता है, वह अपने में। कभी तो उसे अपने आप पर इतना विश्वास होता है कि वह गा उठता है—और कभी उसे अपने प्रति एक विरक्ति

मेरे असमय मर जाने का सपना पढ़ चा
है बहार को
मधुबन वाले रीता रोज प्रलम से मुझे
पुकार रहे हैं।

सी होने लगती है।

मेरा नाम छपा था जिसमें वह कालम बदनाम हो गया'। कहना न होगा कि कवि की यह अभिव्यक्ति कवि के इरादों को एक नया रंग सा दे रही है।

गीतों में मधुकर ने नयी अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। यथा, बालू को 'रमती पिय की प्यारी पनिहारिन' व नीर को 'विरहा अभिसारिन' की उपमा देना तथा शाम को पटती छायाओं के लिये 'किरणों से डर कर छायायें पसर गयीं' विपरीत कहना कितना प्यारा लगता है।

गीतों के अतिरिक्त पुस्तक में मुक्त-छंद की कवितायें व मुक्तक भी हैं। कहना न होगा कि मुक्तछंद में कवि कहीं अधिक उभरा है। गीतों में तो कहीं-कहीं वह सचमुच ही छंदों में बंध गया है। और उसने इसे स्वीकार भी है—'मेरा बंजारा स्वर नजरबंद है छंदों की बस्ती में।' मुक्त छंद की कविताओं में 'सम्बोधन तीन' 'अंधेरे के आस-पास' आदि कविताओं में अभिव्यक्ति कहीं अधिक मुखर हुई है।

राजस्थानी कवि की अपनी भाषा है। अतः अनुभूति की पकड़ और अभिव्यक्ति की सम्पूर्णता राजस्थानी गीतों में बहुत जगह देखने को मिलती है।

मधुकर की यह पहली कृति आगे

भावी कृतियों के प्रति आश्वासन बनाती है। —रही ॐ

*'घर घुल रह जाती है' नन्द किशोर, (पृ० ७२ मू० २१ न पै०) नई कविता नये गीतों के पृथक्भावी विस्तार में जब 'घर घुल रह जाती है' की धुन कानों में पड़ी तो मन्दस्थ मन को छंद-बद्ध गीतों का ही बोध हुआ लेकिन जब पुस्तक खोली, पन्ने पलटे तो स्तम्भित हो गया बोध के विपरीत अनुभूति सभी दर्द को साथ ले चलने वाले नंदकिशोर जी की आवाज कानों के मंडप को छूने लगी चौंको मत ऐसा भी होता है। वास्तव में ऐसा होता भी है कि प्रचलित परम्परा के तीव्र प्रवाह में अनेकानेक जीवंत तत्व छूट जाते हैं और कभी-कभी तो समय का यह बहुस्व अर्थ स्पर्श करना भी भूल जाता है लेकिन जितनी बीते की छलक है वे सम्पूर्ण विभिन्नताओं बाधाओं एवं असंगतियों के समूह में भी अपनी आवाज में मुखरित हो ही जाते हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य में (स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य) 'नव-गीत' विधा की स्थिति ऐसी ही समझनी चाहिए इने गिने दो चार गीतकार हैं जिनकी सम चेता के सहारे हमारे साहित्य की यह विधा अब भी अपनी स्वस्थ परम्परा के साथ जी रही है। घर घुल रह जाती है के कवि नंदकिशोरजी ऐसे ही एक गीतकार हैं

जो नई कविता के प्रकाशित प्रभाव से ... बाद में काव्य लिखने का साहसिक ... कर रहे हैं।

प्रत्याश प्रेम की उपलब्धि के उत्स... में डूब कर सारी प्रकृति के साथ मिलन-सु... को कृष्ण राधा के चिर पावन प्रेम-मिल... के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे हैं—रा... को कान्हा मिला कान्हा को राधा मिल... अर्थात् दोनों ओर प्राप्ति का सुख, ... व्यक्तिगत जीवन में अतुलनीय प्रत्याश... उत्पन्न दर्द की तस्वीर दिखाना भी ... चाहते दिखाई नहीं भी जाती है—... की तस्वीर दिखलाई नहीं जाती—... घुल रह ही जाती है।

जब-तब कवि धरती के मोह को... दार्शनिक अभिव्यक्ति देने का साहस... प्रयास भी करता है और पुनर्मिलन की आस्था लेकर तृष्णा दर्द की टीस संजोये घुटियां भी कह जाता है लेकिन अपने पूर्ण विश्वास के साथ 'कोई माने न माने पर मैं मानता हूँ मेरे दुखे दीप से जलेंगे लाखों दीप।

प्रेम गीत का गायक यह कवि केवल प्रेम प्रसूत तत्वों का उद्घाटन करना ही जीवन का ध्येय नहीं समझता। जीवन का यथार्थ जबकि संघर्ष पथ सामने मुंह बाये आता है तो अपने फौलादी कलेजे एवं चौपायी पंजों से उसका सामना करता

है पीछे नहीं हटता भले ही अपने को मोम का पुतला क्यों न कहे ? "मोह होता है पर राहें मुड़ते नहीं क्यों ये अपने रोक पाते नहीं मुड़ा पाते नहीं'। क्योंकि संघर्ष में जीने की आस्था है।

जीवन का कटु यथार्थ मानवीय भावुकता को मात देता है। बांसुरी के स्वर और कोयल की कूक जीवन में बहुत कुछ अर्थ रखती तो है ही लेकिन रोटी की भूख और भीख की सीटी जहाँ बजी वहीं कि पथिक सब कुछ भूल-भाल कर माँ की सीख भजता ही जाता बिना रुके कोयल और बांसुरी की मधुरता भरी मनुहारों की उपेक्षा करते हुए। संकलन के द्वितीय खंड में जीवन की असंगतियों एवं विषमताओं को बड़े ही नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। अर्थ की बढ़ती हुई महत्ता एवं धनिक शोषितों की स्थिति को कवि ने व्यक्त करता है। "दुनिया की भलाई पैसे की भलाई" 'चोटें करता है महल की अकेली ईंट पर।

सुदृढ़ प्रतीक योजना एवं भावानुकूल भाषा की सहज बोधगम्यता संकलित गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है जिसने "पर धूप चढ़ जाती है" को इस विधा की (नव-गीत) की बड़ी उपलब्धि प्रमाणित कर दिया है। हाँ, कहीं कहीं कवि दर्शन के मोह एवं संगीत के सहज भटकाव में भटक अवश्य गया है पर सतर्कता का छोर कहीं भी नहीं है। अभिव्यक्ति के इस उपेक्षित माध्यम को अपनाकर इस तरुण गीतकार ने जो साहस किया वह नई कविता की इस बाढ़ में बहने वाले अच्छे से अच्छे कवियों के लिये भी एक साहसिक चुनौती है।

कवि और मुखरित-प्रखर हो कर साहित्य की इस विधा-नव-गीत को सम्पन्नता के बहुत समीप पहुँचाने का प्रयत्न करे यही इन पंक्तियों के लेखक की आशा है।

—सरल

★ हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत सं. क्षेमचन्द्र सुमन (पृ. १४४ मू. १०० न. पै.) प्रेमगीत प्रत्येक कवि के कवि जीवन की प्रथम रचना होती है। कवि अपना लेखन-कार्य प्रेमगीत से ही प्रारम्भ करता है। अन्य प्रेरणात्मक अनुभूतियों में से प्रेम-अनुभूति भी एक ऐसी विशिष्ट अनुभूति है जो व्यक्ति को सिरजन के लिये प्रेरणा देती है। यह परम्परा केवल हिन्दी भाषा में ही लागू नहीं होती वरन् प्रत्येक कलाकार का यही इतिहास है। इसके अतिरिक्त 'हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत' पुस्तक की तालिका में नगेन्द्र को राजेन्द्र

...रद, धर्मवीर भारती आदि लेखकों के साथ देख कर उपर्युक्त कथन और भी प्रमाणित सिद्ध होता जान पड़ता है। परन्तु युग के बदलते हुए परिवेश को देखते हुए आज प्रेम गीतों का वह मूल्य नहीं जैसा अन्य युगों में रहा होगा। इस प्रकार आधुनिक युग की नवीन मान्यताओं के मध्य 'चुनौती' स्वरूप क्षेमचन्द्र 'सुमन' का संकलन "हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत" उनकी साहसिक वृत्ति का ज्वलंत प्रमाण है। उनका प्रयास सहानुभूति पाने योग्य है।

प्रत्येक हृदय की प्रेमाभिव्यक्ति भिन्न भिन्न होती है। प्रेम का आगमन किसी की जिन्दगी में नवबहार लाता है किसी के जीवन में प्रेम के आगमन के साथ ही साथ पतझड़ आ जाता है। उदाहरणस्वरूप एक ओर "केदारनाथ अग्रवाल" लिखते हैं — आज बसन्त विलास-हास है, चपल है सरसीले ... दूसरी ओर "तारा पाण्डेय" लिखती हैं "संध्या की बेला यह सूनी आकुलता ... जाती सूनी।' संयोग एवं वियोग ...र के ही दो पक्ष हैं। तुम्हें बांध पाती ...पने में" (महादेवी वर्मा) या "संध्या ...ना निशा रवि शशि भी अनुपति बंधन में चलते हैं" (उदयशंकर भट्ट) या "तुमको बांध चुकी हूँ मन में" (तारा पाण्डेय)। विरह प्रेम की सच्ची कसौटी है। इसके साथ साथ विरह की अभिव्यक्ति का सबसे सरल माध्यम है आँसुओं का बहना—"आज मेरे आँसुओं में याद किसकी मुस्कुराई ?" (उपेन्द्रनाथ 'अश्क') या मेरे गीत किन्हीं आखों पर रुके हुये दो आँसू भर हैं (गिरिजाकुमार माथुर) उपर्युक्त कथन गीतों के अतिरिक्त कुछ चोचले एवं प्रभाव मात्र गीतों का भी इस पुस्तक में समावेश हो गया है। तन्मय बुखारिया लिख हैं— ओ बेदर्दी परदेसी तूने पथ प्रीत सिखाई है री तुमको लाज न आई (तन्मय बुखारिया)। इस प्रकार के गीत हिन्दी गीत-साहित्य को किस दिशा की ओर प्रेरित करेंगे कहना कठिन है।

इन सब के बावजूद जगदीश गुप्त का गीत यद्यपि रीति काल प्रमुख डोर को पकड़े हुए जान पड़ता है अर्थात नखशिख वर्णन इस पर भी गीत में सरसता एवं छिछलेपन के स्थान पर स्वच्छता की महक आती है। "यह चंदन सा चांद महकता यह चांदी सी रात" [illegible] 'सुमन' जी का प्रस्तुत संकलन पठनीय है।

—दुर्गा माहेश्वरी